॥ श्रीहरिः ॥ 1597

चिन्ता-शोक कैसे मिटें ?

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

जयदयाल गोयन्दका

1597

॥ श्रीहरिः ॥

चिन्ता-शोक कैसे मिटें ?

ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
के प्रवचनोंसे संकलित

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

प्रथम संस्करणसे तीन पुनर्मुद्रणतक	२५,०००
सं० २०६३ चतुर्थ पुनर्मुद्रण	१०,०००
योग	३५,०००

मूल्य—आठ रुपये

ISBN 81-293-1320-0

प्रकाशक एवं मुद्रक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान
फोन : (०५५१) २३३४७२१; फैक्स : २३३६९९७
website : www.gitapress.org | e-mail : booksales@gitapress.org

निवेदन

गीताप्रेसके संस्थापक परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके एक ही लगन थी कि मानवमात्र इस भवसागरसे कैसे पार हो! मनुष्य जन्मता है, बड़ा होता है, सन्तान उत्पन्न करता है, मर जाता है। इस प्रकार पशुवत् जीवन बिताकर अन्य योनियोंमें चला जाता है। जीवनकालमें चिन्ता, शोक और दुःखोंसे घिरा रहता है। मनुष्यशरीर पाकर भी यदि चिन्ता और शोकमें डूबा रहा तो उसने मनुष्यशरीरका दुरुपयोग ही किया। यह शरीर चिन्ता-शोकसे ऊपर उठकर केवल भगवत्प्राप्तिके लिये ही प्रभुने कृपा करके दिया है। चिन्ता-शोक हमारी बेसमझीसे ही होते हैं। इसमें प्रारब्ध या भगवान्‌का कोई हाथ नहीं है। हम इस बातको समझ जायँ तो कभी भी चिन्ता-शोक नहीं हो सकते।

श्रद्धेय गोयन्दकाजीने ऋषिकेशमें सर्वप्रथम लगभग सन् १९१८ में सत्संग प्रारम्भ किया था; पुनः लगभग सन् १९२७ से स्वर्गाश्रम ऋषिकेशमें वटवृक्षके नीचे लगभग चार महीने— चैत्रसे आषाढ़तक सत्संग करते रहते थे। उस स्थानपर उन्होंने चिन्ता-शोक कैसे मिटें, शान्ति कैसे मिले, हमें भगवान्‌की स्मृति हर समय कैसे बनी रहे, हम प्राणिमात्रको भगवान्‌का स्वरूप समझकर निःस्वार्थभावसे उनकी सेवा कैसे करें; स्त्री, पुत्र, धन तथा मान-बड़ाईकी आसक्ति—इनको चाहते हुए भगवत्प्राप्ति असम्भव है, गृहस्थाश्रममें रहते हुए माता-बहनें भी किस प्रकार अपनी आध्यात्मिक उन्नति सुगमतासे कर सकती हैं—इन विषयोंका भी विवेचन उनके प्रवचनोंमें हुआ है। भोजन परोसनेमें विषमता करना महान् पाप है, नरकोंमें ले जानेवाला है। पतिकी आज्ञापालनमात्रसे ही माता-बहनें अपना कल्याण कर सकती हैं।

उपर्युक्त भाव लोगोंके हृदयमें बैठ जायँ तो वे अपने कल्याणकी ओर तत्परतासे अग्रसर हो सकते हैं। जीवनमें सदाचार, सरलता, स्वार्थका त्याग बहुत सुगमतासे हो सकता है, चिन्ता-शोक सर्वथा मिट सकते हैं। इस भावसे इन प्रवचनोंको पुस्तकका रूप देनेका प्रयास किया गया है।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१. स्वार्थत्याग एवं सेवाका महत्त्व	१
२. गीताजीकी महिमा	७
३. कल्याण-प्राप्तिके उपाय	१२
४. चिन्ता, भय, शोक कैसे मिटें?	२३
५. दुःखोंका विनाश एवं परमानन्दकी प्राप्ति	४२
६. मनुष्यजन्मकी श्रेष्ठता	४८
७. विश्वासघात कभी न करें	५१
८. निरन्तर भगवान्‌को याद रखें	६८
९. ईश्वरके भजनमें ही समयकी सदुपयोगिता	७२
१०. मनुष्यका कर्तव्य, धारण करने एवं त्यागनेयोग्य बातें	७५
११. निष्काम कर्मयोग, भगवान् एवं महात्माकी एकता तथा श्रद्धाका विषय	८१
१२. गीताका एक श्लोक धारण करनेसे कल्याण	९७
१३. काम-दोषका निवारण	१०३
१४. लोभका विवेचन	१०६
१५. विशेष महत्त्वकी अनमोल बातें	१०८
१६. वैराग्यकी महिमा	१२७
१७. भगवान्‌की दयाका अनुभव करें	१३४
१८. हमारी उन्नति कैसे हो?	१३८
१९. निर्गुण और सगुणका ध्यान	१४५
२०. अनमोल बातें	१५१

॥ श्रीहरि: ॥

स्वार्थत्याग एवं सेवाका महत्त्व

स्वार्थ ही परमात्माकी प्राप्तिमें बाधक है, इसीके कारण विलम्ब हो रहा है। स्वार्थका त्याग कर दें तो परमात्माकी प्राप्ति हो जाय।

हृदयमें स्वार्थकी भावना हर समय रहती है। कोई भी काम करते हैं तो सोचते हैं कि इस कार्यसे हमें क्या लाभ है। इस भावको पलट दें कि इससे संसारका क्या लाभ है।

बहुत-से लोग धन, शरीरका आराम, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा चाहते हैं, यह सब स्वार्थ है। कोई भोग, निद्रा, आलस्य और आराम चाहते हैं। भोग यानि इन्द्रियोंके विषयोंको चाहते हैं। सबका त्याग करके जो अपना कल्याण चाहते हैं, वे सबसे उत्तम हैं, परन्तु ऊँची स्थितिमें जाकर यह इच्छा भी बाधक होती है।

भगवत्प्राप्तिकी इच्छा पवित्र है, पर है तो इच्छा ही। इस इच्छाका त्याग करनेसे मुक्ति या भगवान् शीघ्र मिलते हैं, ऐसी भावना रखनेपर इसमें भी तो इच्छा रही।

संसारसे वैराग्य होकर भगवान्‌में प्रेम हो, यह अच्छी इच्छा है। साधनकी वृद्धिकी इच्छामें आपत्ति नहीं है। निरन्तर साधन ही करते रहें। साधनके लिये ही साधन करें। अन्य किसी भी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है।

जैसे स्वार्थी आदमी हरेक बातमें अपना लाभ किस तरह

प्रवचन—दिनांक ३-६-१९४०, दोपहर, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

होगा यह सोचता है, किसी कामको नीचा और किसी कामको ऊँचा मान लेता है।

हमलोग जब रामेश्वरम् गये थे तो वहाँ पता लगा कि षष्ठीके दर्शन एक बार ही होते हैं। उसमें लोगोंका कितना असत्य व्यवहार धक्का-मुक्की हुआ। ऐसे मौकेपर भगवान् आते भी होंगे तो नहीं आवेंगे। फिर पुलिस आयी और धक्का मारना शुरू किया। ऐसी मुक्तिका स्वार्थ ठीक नहीं है।

स्वार्थ किसी भी प्रकारका नहीं होना चाहिये। मुक्तिका स्वार्थ भी कष्ट देता है। अमुक काम अधिक महत्त्वका है उसे मैं करूँगा, मैं सत्संगमें बैठूँगा। पानी कौन पिलायेगा? न्यायसे सेवा प्राप्त हो जाय तो वह सत्संगसे बढ़कर है। गीता आदि सुनाना परमसेवा है और भोजन आदि देना निम्न श्रेणीकी सेवा है, किन्तु मल-मूत्र साफ करना जिस सेवाका कोई ग्राहक नहीं है, सबसे बढ़कर उच्च श्रेणीकी सेवा है। हमलोगोंमें सेवाका महत्त्व कोई नहीं जानता।

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप॥

(गीता ४। २)

हे परन्तप अर्जुन! इस प्रकार परम्परासे प्राप्त इस योगको राजर्षियोंने जाना; किंतु उसके बाद वह योग बहुत कालसे इस पृथ्वीलोकमें लुप्तप्राय हो गया।

योग यानि निष्काम कर्म यानि यज्ञ, दान, तप, स्वार्थ त्याग-कर करे या भगवदर्थ करे। पर अब निःस्वार्थ भावके अभावसे वह योग नष्ट हो गया है।

हरेक व्यक्तिमें जो स्वार्थपरायणता है, वह पूरा कलंक है।

स्वार्थत्यागी संसारमें बहुत ही कम हैं। धनका, आरामका त्याग ही त्याग नहीं है। सूक्ष्म स्वार्थ मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा है। इसके बाद अपनी आत्माका कल्याण भी स्वार्थ है। सबका कल्याण हो यह ऊँचा भाव है। ऐसा भाव हो जाय तो परमात्माकी प्राप्ति तुरन्त हो जाय। भगवान् कहते हैं—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

(गीता ४। ८)

साधु पुरुषोंका उद्धार करनेके लिये, पापकर्म करनेवालोंका विनाश करनेके लिये और धर्मकी अच्छी तरहसे स्थापना करनेके लिये मैं युग-युगमें प्रकट हुआ करता हूँ।

'परित्राणाय साधूनाम्' की जगह साधुओंकी सेवा करे। **'विनाशाय च दुष्कृताम्'** अपने अंदरके काम, क्रोधादिको नष्ट करे। भगवान्‌की आज्ञाका पालन करे, धर्मका पालन करे। भगवान् उसका उपकार मानते हैं और कहते हैं कि यह हमारा काम करनेवाला है। भगवान् सारे विश्वकी सहायता करते हैं, अतः हमें भी भगवान् सहायता देंगे।

दो आदमी भगवान्‌का दर्शन करना चाहें और आपसमें झगड़ें कि मुझे पहले दर्शन हों तो भगवान् वहाँसे चले जायँगे। शरीर, मन, वाणी सबसे भगवान्‌की सेवा करे।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(गीता १८। ४६)

जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक

कर्मोंद्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धिको प्राप्त हो जाता है।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

(गीता १०। ९)

निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर सन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं।

सारे विश्वको परमात्मा समझकर अपने आचरण और व्यवहारद्वारा सबकी सेवा करें। सबकी सेवा भगवान्‌की ही सेवा है। स्वार्थ त्यागकर सबकी सेवा करे। मनुष्य-शरीरका मौका जा रहा है, कितना चला गया, जो बच गया वह भी जा रहा है। लोग भोग, आराम, धनके लिये लड़ रहे हैं, होना यह चाहिये कि इनके त्यागके लिये लड़े। काम और लोभ यानि कंचन-कामिनीसे बचे।

कंचन तजना सहज है सहज तिया का नेह।
मान बड़ाई ईर्ष्या दुर्लभ तजना येह॥

मानका त्याग कीर्तिके लिये होता है। देवता, ऋषि, साधक कोई भी हों, बड़ाईसे ठगे जा सकते हैं। चोर चुपकेसे, डाकू बलपूर्वक दुःख देकर धन ले जाते हैं। भगवान्‌की सच्ची बड़ाई, गुणगान करे तो भगवान् भी ठगाईमें आ जाते हैं। बात यह है कि किसी भी व्यक्तिको अपने अधीन करना हो तो उसकी बड़ाई करे। भगवान्‌से मिलना हो तो भगवान्‌की बड़ाई करे। ठगाईका शब्द नीचा है, काम ऊँचा निकालना चाहिये। किसीकी भी

निन्दा न करे, अपितु बड़ाई करे यह उससे भी ऊँची बात है।

दूसरेकी प्रशंसा हो रही है, यह सहन नहीं होना ईर्ष्या है। दूसरेकी मान-बड़ाईमें प्रसन्न होवे। राग-द्वेषके त्यागकी बहुत आवश्यकता है। वैराग्यकी वृत्ति बनाओ, वैरागी हो जाओ।

नौकामें पानी बढ़े घरमें बाढ़े दाम।
दोनों हाथ उलीचिये यही सयानो काम॥

इस संसारसागरसे पार होना हो तो यही रास्ता है। कंचन-कामिनीका हृदयसे त्याग करे। उसके बाद मान-बड़ाईका त्याग हो जाय। यहाँतक कि मुक्तिके स्वार्थकी इच्छाका भी त्याग कर दे। सबसे बेपरवाह बना रहे, व्यक्तिगत आनन्दकी इच्छा ही बाधक है।

शरीरको, सारे संसारको परमात्माका रूप मानकर उनकी सेवा करे। सबके लिये त्याग करके भी अभिमान नहीं लाये कि मैंने सेवा की या त्याग किया। ज्ञानमार्गमें प्रकृतिको और भक्तिमार्गमें भगवान्‌को अर्पण कर दे।

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव॥

(गीता १८। ५७)

सब कर्मोंको मनसे मुझमें अर्पण करके तथा समबुद्धिरूप योगको अवलम्बन करके मेरे परायण और निरन्तर मुझमें चित्तवाला हो।

सारे कर्म भगवान्‌को अर्पण कर दे और स्वयं भगवान्‌के शरण हो जाय। अपने-आपको भगवान्‌के अर्पण कर दे, यह भक्तिकी सबसे श्रेष्ठ बात है। नये कर्मोंको करते समय और पुराने कर्मोंको भोगते समय प्रसन्न रहे।

(१) जो कुछ सुख-दुःख प्राप्त हो उसे भगवान्‌का विधान समझकर प्रसन्न होवे।

(२) भगवान् जिस बातसे प्रसन्न हों, उस प्रकारकी क्रिया करे।

(३) भगवान्‌को बड़े दयालु तथा प्रेमी मान-मानकर मुग्ध होवे।

इन तीनोंमें सात्त्विक आनन्द है। यह साधन कैसा है—

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥

(गीता ९। २)

यह विज्ञानसहित ज्ञान सब विद्याओंका राजा, सब गोपनीयोंका राजा, अति पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फलवाला, धर्मयुक्त, साधन करनेमें बड़ा सुगम और अविनाशी है।

भगवान् हृदयमें विराजमान हैं, वहीं भगवान्‌को देख ले। जितने भी कर्म करे, उसे अपने हृदयमें देख ले कि वह कर्म कहाँतक ठीक है।

गीताजीकी महिमा

गीताकी जितनी महिमा कही जाय थोड़ी है। गीता सार्वभौम ग्रन्थ है। गीताका विषय ऐसा है, जिसे सब लोग मान सकते हैं, सारा विश्व मान सकता है। गीताकी संस्कृत बड़ी सरल है और साधारण पढ़ा हुआ व्यक्ति भी पूरा पढ़ सकता है। स्त्रियाँ भी पढ़ सकती हैं।

घनश्यामदासजीकी दादी बिलकुल पढ़ी नहीं थीं, पर जिस तरह अंधा पढ़ लेता है, उसी प्रकार शब्दसे ही गीता पढ़कर वह दूसरोंको सुनाया करती थीं।

व्याकरणसे इसका ज्ञान हो इसमें तो कहना ही क्या है, पर जो व्याकरण नहीं जानता, वह पहले अर्थ पढ़ ले और हृदयमें जमा ले, फिर श्लोकको पढ़े। भाषाके अर्थरूपी बछड़े श्लोकके शब्दरूपी गायोंको पकड़ लेते हैं।

दूसरी रीति यह है कि अन्वयकी दृष्टिसे श्लोकके शब्दोंपर १, २, ३ नं० भी लिख ले, अपने यहाँकी (गीताप्रेसकी) गीतामें तो और भी सरल कर दिया गया है। जैसे भगवान्‌के नामकी महिमा भगवान् स्वयं नहीं कह सकते, उसी तरह गीताकी महिमा स्वयं भगवान् भी नहीं कह सकते।

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥

(महा० भीष्म० ४३। १)

'गीताका ही भली प्रकारसे श्रवण, कीर्तन, पठन-पाठन, मनन और धारण करना चाहिये, अन्य शास्त्रोंके संग्रहकी क्या

प्रवचन—दिनांक ४-६-१९४०, प्रातःकाल, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

आवश्यकता है? क्योंकि वह स्वयं पद्मनाभ भगवान्‌के साक्षात् मुखकमलसे निकली हुई है।'

सारे शास्त्र भगवान्‌के मुखकमलसे नहीं निकले हैं, भगवान्‌के नाभिकमलसे ब्रह्मा, उनसे वेद और वेदसे शास्त्र उत्पन्न हुए, पर गीता तो भगवान्‌के मुखसे उत्पन्न हुई है।

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

पद्मपुराणमें गीता-माहात्म्यके अठारह अध्याय हैं। गीताकी महिमा इतिहास-पुराणमें जितनी पायी जाती है उतनी कहीं शायद ही हो, इतनी टीकाएँ भी किसी और ग्रन्थकी नहीं हैं। गीता गंगासे बढ़कर है। गीतामें स्नान करनेपर अपनी मुक्तिका तो कहना ही क्या है, वह दूसरोंका भी कल्याण कर सकता है।

इसी प्रकार गीताको गायत्रीसे भी बढ़कर कह सकते हैं। सारे शास्त्रोंमें सबसे उत्तम पुस्तक गीता है, उसमें रोचक वाक्य नहीं हैं। अतः इसका अभ्यास अर्थसहित करना चाहिये। जो स्त्रियाँ गीताका श्लोक नहीं पढ़ पायें, वे अर्थका ही पाठ कर लें अथवा श्रवणसे ही मुक्ति हो सकती है।

छः, तीन, दो या एक अध्यायका अभ्यास करे, परन्तु करे अर्थसहित ही। धारण कर ले तो एक श्लोकसे ही उद्धार हो सकता है।

इसका संसारमें प्रचार करना चाहिये। यह न समझे कि हम भगवान्‌को प्राप्त नहीं हुए हैं तो क्यों प्रचार करें। अर्थ, श्लोक जिसका ज्ञान हो उसी प्रकार इसका प्रचार करे। गीता बाँटकर अथवा व्याख्यानद्वारा प्रचार करे अथवा हृदयसे भगवान्‌से प्रार्थना करे कि आपकी गीताका प्रचार हो। मैं मूर्ख हूँ पर जिस तरहसे हो

आप गीताका प्रचार करवाइये, गीताके भावोंका प्रचार करवाइये। ऐसी प्रार्थना करनेवाला गीताका बहुत प्रचार कर रहा है।

गीताके उच्चारणमें मुझसे बहुत अशुद्धियाँ आती हैं, इसका कारण है कि बचपनमें स्वाभाविक ही मैं स्वतः गीता पढ़ने लगा। किसी गुरु या आचार्यसे पढ़नेपर अशुद्धि कम आती है। मैंने किसीसे भी गीता नहीं पढ़ी। हाँ, मधुसूदनी टीका दूसरा अध्याय पं० कन्हैयालालजीसे सुना था। इससे पता चलता है कि बिना किसीसे पढ़े भी इसका अर्थ, भाव समझमें आ सकता है।

जैसे एक आदमी बोले और दूसरा पढ़े, अथवा दूसरी तरहसे पढ़ाये, इस तरहसे पढ़नेका अवसर मुझे नहीं मिला, न मैंने व्याकरण ही पढ़ी। पुस्तक मात्र ही देखी। महाभारत, पातञ्जलयोगसूत्र सब वैसे ही अकेले पढ़े। सूर्यस्तोत्र एवं सन्ध्या तो मैंने चौदह वर्षकी अवस्थामें एक ब्राह्मणसे पढ़ी थी, मेरे-जैसे कम पढ़े-लिखे व्यक्तिकी बातको भी दूसरे सुनना चाहते हैं तो जो विधिपूर्वक पढ़ते हैं उनकी तो बात ही क्या है। वह कितना प्रचार कर सकेगा इसका ठिकाना नहीं है, पर इसके लिये लगन होनी चाहिये। उसीसे सब कुछ सिद्ध होगा।

मनुष्यके द्वारा कोई भी कार्य असाध्य नहीं है। मुझे प्रत्यक्षमें चार-पाँच बातोंका अनुभव हुआ। अपने अनुभवकी बातसे लोगोंको बड़ा लाभ होता है—

१. जो वास्तवमें त्यागी, विरक्त महात्मा हैं उनके संग-दर्शनसे बड़ा लाभ होता है।

२. भगवान्‌के नाम-जपसे बड़ा लाभ होता है, यह अनुभवकी बात है, इससे विक्षेप पापोंका नाश होता है और नाम-जपकी अपेक्षा प्राणायामसे आलस्यका नाश अधिक होता है।

३. संयम यानि इन्द्रियोंको विषयोंसे हटानेसे बहुत लाभ होता है। पर इससे भी ज्यादा लाभ वैराग्यसे मिला। विरक्त पुरुषोंके विषय यानि वैराग्यकी भावनासे भी बहुत लाभ मिला। वास्तविक उपरति वैराग्यसे होती है। हठसे त्यागमें भी लाभ है, पर मामूली लाभ है, यदि हठसे भी संयम रखे तो पाप नहीं होता है, पर मुक्ति भी नहीं होती। ये चारों बातें अलग-अलग हैं।

असहयोग यानि विषयोंको छोड़ देना हठसे भी होता है, उससे उत्तम संयम है, उससे उत्तम वैराग्य एवं उससे उत्तम उपरति है। जैसे कसाईकी दुकानपर मांसकी तरफ हमारी वृत्तियाँ नहीं जाती हैं, इसे उपरामता कहते हैं और जिसमें रुचि नहीं हो, राग नहीं हो उसे वैराग्य कहते हैं। रागके अभावका नाम वैराग्य है। वैराग्य होता है तो उपरति तो एक क्षणमें हो जाती है। तीव्र वैराग्य हो एवं उपरति न हो तब भी कोई बात नहीं है।

तीव्र वैराग्य नहीं हो तो विषयोंके संगसे आसक्ति पैदा हो जाती है। वाणीका संयम यह है कि तौल-तौलकर बोले। हाथका संयम यह कि स्त्री, बालकोंका स्पर्श न करे। इसी प्रकार नेत्रोंका संयम रखे, किसी पदार्थपर या स्त्रीपर नेत्र नहीं जायँ। रोक देनेसे नेत्र रुक जाय, यह संयम है। पर उसका उसमें राग है, मनमें पाप समझकर वह त्याग देता है।

जिसकी मन-इन्द्रियाँ संयमित होती हैं, वह बलात् त्याग कर सकता है, अन्यथा त्याग करना भी कठिन है।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥

(गीता २। ६०)

विवेकी पुरुष रोकनेका यत्न करता है। तब भी उसकी इन्द्रियाँ उसके मनका हरण कर ले जाती हैं।

इन्द्रियाँ प्रमथनशील यानि मथन करनेवाली हैं। स्त्रीको देखना मथन करना है। नेत्र और मनके शामिल हो जानेसे कामोद्दीपन होता है। उससे वीर्य संचरित हो गया तो यह और भी पतन हुआ—यह मथन है।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

(गीता २। ६१)

इसलिये साधकको चाहिये कि वह उन सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वशमें करके समाहितचित्त हुआ मेरे परायण होकर ध्यानमें बैठे; क्योंकि जिस पुरुषकी इन्द्रियाँ वशमें होती हैं, उसीकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

जिनकी इन्द्रियाँ वशमें होती हैं, वे उसके मनको बलात् विषयोंमें नहीं ले जा सकतीं। यहाँ इन्द्रियोंके साथ मनको भी ले लेना चाहिये। मन भी एक इन्द्रिय है, इन्द्रियोंके वशमें नहीं होनेपर भी विषयोंसे थोड़ा असहयोग हो जाता है तो थोड़ा ही लाभ होता है।

हठसे त्याग, इन्द्रियोंपर नियन्त्रण, वैराग्ययुक्त नियन्त्रण, उपरति, वैराग्यसहित उपरति—ये सब एक-दूसरेसे श्रेष्ठ हैं।

इन सबमें असली चीज है वैराग्य। यानि संसारमें रमणीयता और रागकी कमी हो जाना। उससे बढ़कर ध्यान है। सारे साधनोंका फल ध्यान है और ध्यानका फल परमात्माकी प्राप्ति है।

यह बात भी मानते हैं कि केवल निष्कामकर्मसे ही परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। पर ध्यानको अधिक महत्त्व देना चाहिये।

यह उपर्युक्त बातें जो बतलायी गयी हैं, उनका मैंने कुछ-कुछ अनुभव किया है, वास्तविक अनुभव तो भगवान्‌को ही होता है।

कल्याण-प्राप्तिके उपाय

कल्याण-प्राप्तिके कुछ उपाय ये हैं—गीता-अभ्यास, नामजप, परमात्माके स्वरूपके ध्यानका अभ्यास, वैराग्य, संयम और सेवा।

केवल निष्काम सेवासे भी कल्याण हो जाता है। दुःखकी बात है कि हमलोग सेवाके तत्त्वको नहीं जानते। इसमें हमारी रुचि नहीं है, क्योंकि इसपर श्रद्धा-विश्वास नहीं है।

भजन, ध्यान, वैराग्य होना हाथकी बात नहीं है, पर भगवान्की दयाका अनुभव करके उपर्युक्त साधन करना चाहिये। नामजप तो हठसे भी कर सकते हैं। ईश्वरकी आज्ञानुसार तत्परतापूर्वक साधन करना चाहिये। ऐसा करनेसे ईश्वरकी सहायता प्राप्त होती है।

हम जो कुछ आगे बढ़ रहे हैं या बढ़े हैं, उसमें भगवान्की दया समझे। सारे गुणोंमें जो उत्तम-से-उत्तम गुण हैं, उनमेंसे यदि एकका भी सेवन करे तो भगवान्की प्राप्ति हो सकती है।

जैसे श्रद्धा-गुण आ जाय तो सब हो सकता है, दूसरा गुण प्रेम है। भगवान्में रुचि हो जाय तो भजन स्वतः होने लगता है, करना नहीं पड़ता।

जैसे स्त्रीमें रुचि है तो वह रुचि बलात् उस स्त्रीकी ओर ले जाती है। रुचि होनेपर जो भजन होता है, उससे त्रिलोकीके बाहरका आनन्द अर्थात् अलौकिक आनन्द आता है। उसे हम तभी समझेंगे जब हमारी भजनमें रुचि होगी।

बीमारीमें भोजन करनेकी इच्छा नहीं होती, अपितु कोई भोजन करनेके लिये कहे तो भारी लगता है। पर भूखे आदमीको

खाली रोटी भी अच्छी लगती है, फिर परमात्माके मिलनेसे कितना आनन्द आता होगा! जैसे प्यास लगनेपर भी खारा जल रुचिकर नहीं होता, पर मीठा जल बहुत ही अच्छा मालूम होता है, अतः रुचि पैदा करे।

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

रुचि और प्रीति एक ही चीज है। भगवान्‌के नाम, भक्तिके साधनमें प्रेम होना चाहिये। रुचि होनेपर भगवान्‌का नाम अमृतसे बढ़कर लगेगा। समता और दयामें ऐसी चीजें हैं कि एकसे भी काम चल जाता है। जिसमें दया नहीं, उसका सारा धर्म प्राणहीन है, धर्मका प्राण दया है।

एक ओर सत्य बोलना है और एक ओर प्राण जाते हैं। ऐसी जगह दया ऊँची चीज होनेके कारण निरपराधीका प्राण बचा दे। वहाँ झूठ बोल देना अच्छा है। ऐसी स्थितिमें दयालु तो सत्य बोल ही नहीं सकता, चाहे उसे नरकमें ही क्यों न भेज दो, सत्यसे बढ़कर भी दया है। भीतरी दया मूल्यवान् है। गुप्त चीजें ज्यादा मूल्यवान् हुआ करती हैं। गुप्त यानि बाहरमें उसका संकोच करे, लोग यह न जानें कि हममें श्रद्धा, दया, प्रेम है। जाननेसे लोग अनुचित लाभ उठायेंगे। दान देनेके समय कंजूस-जैसा और सेवाके समय कठोर-जैसा व्यवहार होना चाहिये, अन्यथा अपात्र और पाखण्डी लोग ले जायँगे और पात्र रह जायँगे। रोनेसे देगा तो लोग रोने लग जायँगे। गुप्तरूपसे दया रखे। इसी प्रकार श्रद्धा या प्रेमकी बात है।

प्रभुसे प्रेम है तो प्रभु ही जानें और हम जानें, तीसरा कोई न जाने, तीसरेको जनाना तो मान-बड़ाई चाहना है। अतः जितने भी गुण हैं, इनका गुप्त रहना ठीक है। गुप्त रहनेवाला गुण बढ़ता

रहता है और प्रगट होनेवाले गुणमें मान, बड़ाई और दम्भतक आनेकी सम्भावना है। समता व्यवहार करते समय नहीं पहचानी जा सकती। देखनेमें विषमता दीखती है पर वास्तवमें समता है।

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते॥

(गीता १८। १७)

जिस पुरुषके अन्तःकरणमें 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा भाव नहीं है तथा जिसकी बुद्धि सांसारिक पदार्थोंमें और कर्मोंमें लिपायमान नहीं होती, वह पुरुष इन सब लोकोंको मारकर भी वास्तवमें न तो मारता है और न पापसे बँधता है।

उसकी विषमता समतासे भी मूल्यवान् है। विषमता तो हृदयका भेदभाव ही है। सबके साथ एक-सा व्यवहार हो ही नहीं सकता। नहीं तो उनके कार्यसे हम समझ लेते, फिर शास्त्र उन पुरुषोंको पहचानना कठिन क्यों बतलाता। समता, श्रद्धा, प्रेम, दया—इनमेंसे एक भी हृदयमें धारण हो जाय तो परमात्माकी प्राप्ति हो जाय।

उपर्युक्त चारोंमें दया सरल है। समता बहुत मूल्यवान् है पर इसकी प्राप्ति बहुत कठिन है। श्रद्धा चाहनेसे प्राप्त होती है पर हम चाहते नहीं। इसमें भी कुछ पराधीनता है। इसी प्रकार नाममें प्रेमकी चाह है। कई वर्षोंसे अभ्यास करते हैं पर भजन नहीं होता। इसमें भी रुचि होनेकी स्वतन्त्रता नहीं है। परन्तु दयामें इतनी कठिनता नहीं है, मनुष्य दयाका दायरा बहुत बढ़ा सकता है। दूसरेको दुःखी देखकर उसे सहन नहीं करे, यह दयाका भाव है।

यह दयाका भाव भीतरमें रखनेलायक है। प्रकाशित करनेकी आवश्यकता नहीं है। राजा रन्तिदेव बड़े दयालु थे। ईश्वर-भक्ति

उनमें गौण थी पर दया मुख्य थी। उन्हें कई दिनोंतक भोजन नहीं मिला। जब उनचास दिन हो गये, प्राण जाते समय उन्हें एक गिलास जल मिला। जैसे ही वे जल पीनेवाले थे, एक चाण्डाल आ गया और उसने जल माँगा। राजा वह जल प्रसन्नतापूर्वक चाण्डालको दे देते हैं। दूसरेके दुःखको देखकर दुःखित हो जाय, सह न सके, यह दयाका भाव है। यह बड़ी अच्छी चीज है। अतः दयाके भावको बढ़ाये।

भक्तिकी दृष्टिसे सेवा और नीतिकी दृष्टिसे परोपकार एक ही चीज है। सारे संसारको प्रभुका स्वरूप मानकर सारे संसारकी सेवा करे। उपकार या सेवाकी क्रिया एक ही है, भाव एक ही है। शरीरसे दूसरेकी सेवा सेवा है और नीतिज्ञ पुरुष उसे परोपकार कहते हैं।

एक साधु पार जानेके लिये नौकामें बैठा, दो दुष्ट आये तो साधु सरककर बैठ गये। उन दुष्टोंने साधुको सरका-सरकाकर बैठनेके पटरेसे नीचे नौकामें गिरा दिया। आकाशवाणी हुई— आपका आदेश हो तो इन्हें डुबा दिया जाय तो वह साधु रोने लगा। दुष्टोंने समझा कि अब मौत आयी, वे भयसे काँपने लगे। वह साधु बोला—यदि परमात्माकी मुझपर दया है तो ये दोनों मेरे-जैसे ही बन जायँ, क्योंकि इन्होंने मेरा संग किया, लात मारकर स्पर्श किया, गाली दी तो बातचीत हो ही गयी, यदि उन्हें डुबा दिया जायगा तो मेरे-जैसा दुष्ट और कौन होगा! यह सुनकर आकाशवाणीने तथास्तु कहा। दुष्टोंपर असर पड़ा और वे साधुके चरणोंमें गिर पड़े और कहा कि हमारे पाप कैसे मिटेंगे। साधुने कहा—इसमें कोई अपराध नहीं हुआ। वे भी साधुके व्यवहारसे सन्त बन गये। महात्माको मानना चाहिये कि मेरी

श्रद्धासे ऐसा हुआ, उन दुष्टोंको यह मानना चाहिये कि साधुकी दयासे हुआ। सभी कामोंमें यही बात घटानी चाहिये। अपने-अपने स्थानमें दोनों बातें सच्ची हैं। श्रद्धा, प्रेम, समता एवं दया—इन चारोंमें कोई एक बात भी होनेपर उसका व्यवहार बड़ा उदारतापूर्ण और त्यागपूर्ण होगा। समता और दया तो ऐसी व्यापक है कि ज्ञान, भक्ति सबमें इनकी आवश्यकता है।

समता होनेपर जो व्यवहार होगा, वह त्यागका होगा। उसके कोई पक्षपात नहीं रहेगा, अतः राग-द्वेषरहित व्यवहार होगा। जैसे भगवान् कृष्णने दुर्योधन और युधिष्ठिर दोनोंको सहायता दी।

समतामें अपने स्वत्वका ही त्याग होता है। समतामें दया आ ही जाती है। इसी प्रकार श्रद्धाकी बात है, हम सबको नारायण ही मानते हैं, अतः हम उनकी तन, मन, धनसे सेवा करेंगे।

इसी प्रकार जहाँ प्रेम होता है, वहाँ उदारता और त्यागका व्यवहार होता ही है। चाहे लौकिक प्रेममें घटाकर देख लो।

एक जातिकी चीजें होनेके कारण दूसरी चीजें भी आ जाती हैं। ये सब एक ही जातिके भाव हैं। अतः एक चीज भी पकड़ ले तो चारों आ जायँगी। जैसे खटियाके एक पायेको खींचनेसे दूसरे तीन भी आते हैं। इस प्रकार इनमें दयाका पाया बड़ा सीधा है। सब जीवोंमें हेतुरहित दया बड़ी महत्त्वपूर्ण है। भगवान्‌में तो यह होती ही है, भक्तोंमें भी होती है।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥

(गीता १२। १३)

जो पुरुष सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित, स्वार्थरहित, सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित, अहंकारसे

रहित, सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देता है।

करुणसे दया लेना चाहिये। दया सत्संगसे और सेवासे बढ़ती है। जैसे बकरा काटनेसे कसाईमें निर्दयता आ जाती है, पर जिसने नहीं काटा है वह मरना स्वीकार कर लेता है, पर गाय, बकरेकी तो बात ही क्या है, क्षुद्र जीव तिलचट्टेको भी नहीं मार सकता। दयासे फिर वह उसके उपकारमें लग जाता है। जैसे एक आदमी ध्यानमें बैठा है, उसे कुत्ते या गधेकी आर्त आवाज आयी, जाकर देखता है कि कुत्तेके बच्चेका पैर कट गया है तो उसे दुःख होता है, मानो उसीकी टाँग टूट गयी। पहले जल लाकर डालता है अथवा चिकित्सालय ले जानेकी चेष्टा करता है।

यहाँतककी कथा आती है कि दयाकी वृद्धि हो जानेपर पशुको मारनेपर अपनी पीठपर मारता है, ऐसा प्रतीत होता है। भगवान् ऐसे दयालु हृदयवालेसे मिले बिना नहीं रह सकते। हममें यदि दया-भाव आ जाय तो फिर सेवा करना सीखना नहीं पड़ेगा।

इसी प्रकार सब भगवद्रूप हैं, ऐसी श्रद्धा हो जाय तो वह श्रद्धा ही सिखा देती है कि सेवा कैसे करनी चाहिये। श्रद्धा नहीं हो सके और उनमें बुरे दोष दीखें तो दया करे। दुःखी अवस्थामें सभी दयाके पात्र हैं। दया नहीं हो सकती, ऐसा नहीं कहा जा सकता। पापी अधिक दयाका पात्र है, इसीलिये भगवान्‌का नाम पतितपावन है। तुम भी पतितपावन बनो, हेतुरहित उपकारी बनो।

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥
स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं॥

ऐसा भाव नहीं हुआ तो हम भी स्वार्थी ही रहे। पशुओंकी कोटिमें ही रहे। हेतुरहित उपकारी बनना यह भगवान्‌की कोटि है।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५। २९)

मुझे सम्पूर्ण भूतप्राणियोंका सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्वसे जानकर शान्तिको प्राप्त होता है। भगवान्‌को सुहृद् जाननेपर वह भी सुहृद् बन जाता है।

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते॥

(गीता ४। १४)

कर्मोंके फलमें मेरी स्पृहा नहीं है, इसलिये मुझे कर्म लिपायमान नहीं करते। इस प्रकार जो मुझे तत्त्वसे जानता है, वह भी कर्मोंसे नहीं बँधता है। जो भगवान्‌के कर्म करनेकी विधिको जान जाता है, उसके कर्म भी वैसे ही होने लगते हैं।

जब भगवान्‌को हेतुरहित दयालु समझ लेता है तब उसे किस बातकी चिन्ता है, फिर शान्ति मिल जाती है। अतः हमें इस प्रकार दयाके भावकी हृदयमें खूब वृद्धि करनेकी आवश्यकता है। आतुर पुरुषकी सेवासे भगवान् बहुत शीघ्र दर्शन देते हैं। भगवान् जो छिप रहे हैं उसका कारण यही है कि हममें न वैसी श्रद्धा है, न दया है, न प्रेम है और न समता ही है। समता पूर्णरूपसे आ जानेपर तो सिद्ध ही हो जाता है। साधकमें भी कुछ-कुछ समता आ जाती है, अतः हमें इन चारोंमेंसे कोई एक गुण अपनेमें लानेकी चेष्टा अवश्य करनी चाहिये और वह गुण पूर्ण मात्रामें हो।

यदि हमारा हेतुरहित प्रेम हो जायगा तो हमसे उदारतापूर्वक दयाकी चेष्टा होगी। इसी प्रकार दया, श्रद्धा, समता होनेसे भी सेवाकी ऐसी ही चेष्टा होगी।

अपने शरीरका बलिदान देकर भी दूसरेकी सेवा करे तो

बड़ी ऊँची बात है। ऐसी सेवा सकामभावसे हो तो भी बड़ी लाभदायक है और निष्कामभावसे तो मुक्ति देनेवाली है।

ऐसा करनेवालेके उद्धारमें शंका नहीं है। यह बात इसलिये कहता हूँ ताकि आत्माके उद्धारके लोभसे ही आप इसे कर लें। गन्दे (सांसारिक) स्वार्थका त्याग होकर उद्धारका स्वार्थ लक्ष्यमें रखकर भी यह हो जाय तो ठीक है। इससे भी नीचे उतरना है कि मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाके लिये करो। इससे भी नीचे उतरो तो सारा विश्व तुम्हारी सेवा करेगा, क्योंकि सेवा करनेवालेकी सब सेवा करना चाहते हैं। सबसे ऊँचा वह है जो बिलकुल हेतुरहित करे, ये बातें भगवान् और भगवान्के भक्तमें ही मिलेंगी।

किसी हेतुको लेकर होनेवाली सेवा तो बीचमें छोड़ी भी जा सकती है पर हेतुरहित सेवा छोड़ी नहीं जा सकती। अतः हेतुरहित सेवा जिस तरह सुचारु रूपसे होगी, वैसी और किसी स्वार्थको लेकर की हुई सेवा नहीं होगी। भगवान्का चरित्र और उनकी चेष्टाका हेतु क्या है? भगवान् कहते हैं—

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥

(गीता ३। २२)

हे अर्जुन! यद्यपि मुझे तीनों लोकोंमें कुछ भी कर्तव्य नहीं है तथा किंचित् भी प्राप्त होनेयोग्य वस्तु अप्राप्त नहीं है तो भी मैं कर्ममें ही बर्तता हूँ। मनुष्यको तो कर्तव्य भी है पर भगवान्को कोई कर्तव्य नहीं है।

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥

(गीता ३। १७)

परन्तु जो मनुष्य आत्मामें ही प्रीतिवाला और आत्मामें ही तृप्त तथा आत्मामें ही सन्तुष्ट हो, उसके लिये कोई कर्तव्य नहीं है। वे जिस लक्ष्यसे कर रहे हैं, उसी लक्ष्यको ध्यानमें रखकर करे। महात्मा क्यों कर रहे हैं। किसीपर अहसान न जनावे, क्योंकि क्या महात्मा या भगवान् हमपर अहसान करते हैं? जनाया नहीं, पर मनमें यह भाव आता है कि मैं नहीं होता तो कौन करता। ऐसे आदमीको पास होनेपर भी भगवान् दूर हटा देते हैं। अच्छे पुरुष करते आये हैं इसलिये करे। भगवान् कहते हैं—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥

(गीता ४। १३)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णोंका समूह, गुण और कर्मोंके विभागपूर्वक मेरेद्वारा रचा गया है। इस प्रकार उस सृष्टि-रचनादि कर्मका कर्ता होनेपर भी मुझ अविनाशी परमेश्वरको तू वास्तवमें अकर्ता ही जान।

गुण-कर्मोंके विभागसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मेरे-द्वारा रचे गये हैं। उनके कर्ता मुझ अविनाशी परमेश्वरको तू अकर्ता ही जान। क्योंकि कर्मोंके फलमें मेरी स्पृहा नहीं है, इसलिये मेरेको कर्म लिपायमान नहीं करते। इस प्रकार जो मेरेको तत्त्वसे जानता है, वह भी कर्मोंसे नहीं बँधता है।

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्॥

(गीता ४। १५)

पूर्वकालके मुमुक्षुओंने भी इस प्रकार जानकर ही कर्म किये हैं। इसलिये तू भी पूर्वजोंद्वारा सदासे किये जानेवाले कर्मोंको ही कर।

इससे सिद्ध होता है कि भगवान् जिस प्रकार कर्म करते हैं, उसे ध्यानमें रखकर मुमुक्षु भी उसी प्रकार कर सकता है। यह नहीं हो तो कर्तव्य मानकर करे।

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः॥

(गीता १८। ९)

हे अर्जुन! जो शास्त्रविहित कर्म करना कर्तव्य है—इसी भावसे आसक्ति और फलका त्याग करके किया जाता है—वही सात्त्विक त्याग माना गया है।

यह सात्त्विक कर्म है और वह इसी प्रकार गुणातीत कर्म है। ईश्वरने सबका कर्तव्य नियत किया है।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि॥

(गीता १२। १०)

यदि तू उपर्युक्त अभ्यासमें भी असमर्थ है तो केवल मेरे लिये कर्म करनेके ही परायण हो जा। इस प्रकार मेरे निमित्त कर्मोंको करता हुआ भी मेरी प्राप्तिरूप सिद्धिको ही प्राप्त होगा।

इतना नहीं हो सके तो कल्याण या मुक्तिकी इच्छासे ही करे। इससे ऊँचा समझकर करे, कर्तव्य और महात्माकी आज्ञा देखकर करना उससे भी ऊँचा है।

भगवान् जितना कर सकते हैं उतना महात्मा नहीं कर सकते और जितना महात्मा करते हैं उतना कोई साधारण पुरुष नहीं कर सकता। महात्मा और भगवान्के कर्मोंमें हेतु संसारका कल्याण होता है, यही हेतु रखकर हम भी करें। यह भी नहीं हो सके तो अपने स्वार्थको उसमें शामिल करके करे।

दयालु ऐसे होते हैं जो अपना हक भी दूसरोंको दे देते हैं। दयामें यह कोई बड़ी बात नहीं है, वह तो अपने-आपको अर्पण कर देते हैं। मान लो भगवान् विमान लेकर आयें और पूछें कि कितने आदमी हो? तेरह, भगवान् कहें कि विमानमें बारह व्यक्ति बैठ सकते हैं। स्वार्थत्यागी कहेगा कि मुझे छोड़कर इन लोगोंको ले जायँ। इस त्यागका बड़ा भारी महत्त्व है। भगवान् मुझ अकेलेके लिये विमान लायँगे, यह भाव रखना भी कलंक है। इस प्रकार विमानके एक बार जानेकी सम्भावना हो और जगह न हो तो प्रसन्नतापूर्वक रह जाय।

दयाका ऐसा भाव लाना चाहिये कि दूसरेके हितके लिये अपना बलिदान भी हँसते-हँसते स्वीकार कर ले।

विमान भेज सकें तो भेज दीजियेगा, यह भाव भी ठीक है, पर इससे भी ऊँचा वह है कि भेजें चाहे न भेजें, अपने तो आनन्द है।

वह बलात् जहाजमें बैठे तो सब डूब जायँगे। स्वार्थमें सब डूबते हैं पर स्वार्थके त्यागसे सभी बचते हैं। अतः स्वार्थका त्याग करके हममें कुछ सेवाका भाव आना चाहिये। यह भाव श्रद्धा या दया किसी भी बातको लेकर आये, भाव आना चाहिये। भाव आनेपर ऐसी क्रिया होना उसकी कसौटी है।

सबसे उत्तम तो यही है कि हेतुरहित करे, यदि मान-बड़ाईके लिये ऐसा त्याग करे तो भी उत्तम है। इसी प्रकारका भाव संसारके भीतर भी रखे। मनुष्यमें उदारता और त्यागका भाव होना चाहिये। दयाके यह भाव बहुत शीघ्र हो सकते हैं। जिसमें दया नहीं, वह मनुष्य पशुके समान है।

चिन्ता, भय, शोक कैसे मिटें ?

हमें इसी बातका विचार करना चाहिये कि हमें चिन्ता, भय, शोक आदि क्यों होते हैं? प्रारब्धसे होते हैं या क्या हेतु है? इसका कोई उपाय हो तो प्रयत्न करना चाहिये। शास्त्रोंके देखने और युक्तियोंके विचारनेसे भी मालूम होता है कि इनका नाश हो सकता है। वासना, पाप, पुण्य-कर्म, सुख, दुःख, फल आदि सब नष्ट हो सकते हैं। सबका हेतु अज्ञान है।

तस्य हेतुरविद्या—जड़-चेतनके संयोगमें दुःख होता है।

अज्ञानका नाश ज्ञानसे, ज्ञानकी प्राप्ति परमात्माकी दयासे एवं साधन करनेसे हो सकती है। भगवान् कहते हैं—

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥

(गीता २। ११)

हे अर्जुन! तू न शोक करनेयोग्य मनुष्योंके लिये शोक करता है और पण्डितोंके-से वचनोंको कहता है; परंतु जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिये भी पण्डितजन शोक नहीं करते। भगवान् गीतोपदेशके समापनमें कहते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

प्रवचन—दिनांक ५-६-१९४०, प्रातःकाल, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

सम्पूर्ण धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार परमेश्वरकी ही शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।

ऐसी स्थितिमें भगवान् भार लेते हैं, इससे भी सिद्ध होता है कि ज्ञानीको शोक, दुःख नहीं होता। चिन्ता-शोक प्रारब्धसे भी नहीं होते। संसारको स्वप्न समझनेसे शोक कैसे हो सकता है।

प्रारब्धसे निन्दा-स्तुति, लाभ-हानि होते हैं, पर प्रारब्धसे चिन्ता, भय, शोक नहीं होते। भगवान्‌की शरण होनेसे शोक नहीं होता, सारे विकारोंका नाश ज्ञान होनेपर हो जाता है। ज्ञान महापुरुषों और भगवान्‌की शरणमें जानेसे होता है।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०। ९-१०)

निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर सन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं।

उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

(गीता ४। ३४)

अर्जुन! तू उन महात्माओंकी शरणमें जा, श्रद्धा-प्रेमसे उनकी सेवा करके शुद्ध नियतसे प्रश्न करके उस ज्ञानको जान। वे महात्मा तेरे प्रति ज्ञानका उपदेश करेंगे। फिर तेरा शोक-मोह सबका नाश हो जायगा।

इससे भी सिद्ध होता है कि भगवान्‌की शरण होनेसे, भक्ति करनेसे मनुष्य शोक-मोहसे तर जाता है। श्रुति कहती है कि शरण एवं भक्ति हर्ष-शोकका नाश कर देता है।

हमें यही करना चाहिये। सारे क्लेशोंसे मुक्त हो जाय और ऐसा आनन्द प्राप्त हो कि लाखों ब्रह्माके हो जानेपर भी यह आनन्द बना ही रहे। उसके बाद कोई कर्तव्य नहीं रहता। उसके लिये प्रयत्न करनेवाला महात्मा है, यानि महात्मा होनेवाला है।

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥

(गीता ९। १३)

परंतु हे कुन्तीपुत्र! दैवी प्रकृतिके आश्रित महात्माजन मुझको सब भूतोंका सनातन कारण और नाशरहित अक्षरस्वरूप जानकर अनन्यमनसे युक्त होकर निरन्तर भजते हैं।

यहाँ भगवान्‌ने भजन करनेवाले साधकोंको भी महात्मा कहा है—

यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

(गीता ७। ३)

उन यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई एक मेरे परायण होकर मुझको तत्त्वसे अर्थात् यथार्थरूपसे जानता है।

यहाँ भी सिद्ध कहा। परमात्माकी प्राप्तिके लिये जो जी-तोड़ प्रयत्न करते हैं वे भी महात्मा हैं, अतः ऐसा ही प्रयत्न करना चाहिये, यह प्रयत्न मनुष्य-योनिमें ही हो सकता है। यदि पाँच

मिनटकी या जरा-सी भी कमी रह गयी तो मारे गये। आठ आनाकी कमी रह गयी तो बीचमें ही जंगलमें रह जायेंगे। हमें अपना काम बना लेना चाहिये।

काम बन जाय फिर कोई बात नहीं। जो अपनी आत्माके लिये जीतोड़ प्रयत्न करता है, वही बुद्धिमान् है। जो एक क्षण भी व्यर्थ काममें बिताता है, वह महामूर्ख है, स्वयं अपने गलेमें फाँसी डालकर मरनेवाला है। उत्तम जाति, उत्तम देश, उत्तम काल, उत्तम संग, सब उत्तम पाकर भी जो अपना उद्धार नहीं करता उसे धिक्कार है। वह निंदाका पात्र है। जो भगवान्‌के दिये हुए मौकेको काममें नहीं लाता है, वह नीच योनिमें जाता है।

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः।
ताꣳस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

(ईशावास्य० ३)

असुरोंके (जो) प्रसिद्ध नाना प्रकारकी योनियाँ एवं नरकरूप लोक हैं, वे सभी अज्ञान तथा दुःख-क्लेशरूप महान् अन्धकारसे आच्छादित हैं। जो कोई भी आत्माकी हत्या करनेवाले मनुष्य हों, वे मरकर उन्हीं भयंकर लोकोंको बार-बार प्राप्त होते हैं।

इसे विचारकर हमें खूब सावधानीके साथ समय बिताना चाहिये। स्त्री, पुत्र, धन आदि जो हमारे कल्याणमें बाधक हों उनका भी त्याग कर दे तो कोई आपत्तिकी बात नहीं है। जहाँतक बने वहाँतक तो माता-पिता आदिकी सेवा करे।

प्रह्लादजी पिताकी आज्ञा नहीं माने, बलिने गुरुकी आज्ञा नहीं मानी, भरतजीने माताकी आज्ञा नहीं मानी तो कोई हानि नहीं।

प्रयत्न तो यही करे कि माता-पिता आदिकी आज्ञा माने और भक्ति भी करे। पर वे भक्तिका विरोध करें तो उतने अंशमें उनकी आज्ञाका भी त्याग कर दे तो छूट है।

हम जिस उद्देश्यसे संसारमें आये हैं, उस कामको हमें कर ही लेना चाहिये। हमें प्रयत्न करनेमें तत्पर होना चाहिये। फिर उसकी प्राप्ति, अप्राप्ति भगवान्पर छोड़ दें। अपना एक क्षण भी व्यर्थमें या भोग-प्रमादमें न बितायें।

शास्त्र, हृदय एवं महापुरुष—शिक्षाके ये तीन द्वार हैं। शास्त्रमें शंका हो तो जिसमें विश्वास हो उससे पूछे, यह भी नहीं हो तो एकान्तमें बैठकर भगवान्से प्रार्थना करे, भगवान् हृदयमें प्रेरणा कर देंगे। महात्मासे पत्र-व्यवहारद्वारा या मिलकर पूछे।

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा॥

(गीता ६। २३)

जो दुःखरूप संसारके संयोगसे रहित है तथा जिसका नाम योग है, उसको जानना चाहिये। वह योग न उकताये हुए अर्थात् धैर्य और उत्साहयुक्त चित्तसे निश्चयपूर्वक करना कर्तव्य है।

जहाँ दुःखोंके संयोगका अत्यन्त अभाव है और परमानन्दकी प्राप्ति हो जाती है, इसका सबसे सुगम साधन यह है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

अनन्य चिन्तन करनेवाले योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, पर हम अनन्य चिन्तन नहीं कर सकते और साधनमें अनेक प्रकारके विघ्न आते हैं तो क्या करें? अपनी शक्तिभर अनन्य चिन्तनकी

चेष्टा करें, उसके लिये भगवान् कहते हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९। २२)

जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

अप्राप्तकी प्राप्ति योग है, प्राप्तकी रक्षा क्षेम है, तब हमें क्या चिन्ता है, हमें तो सब प्रकारसे भगवान्‌की शरण हो जाना चाहिये।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(गीता १८। ६२)

हे भारत! तू सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही शरणमें जा। उस परमात्माकी कृपासे ही तू परम शान्तिको तथा सनातन परम धामको प्राप्त होगा।

उनकी कृपासे परम शान्तिको प्राप्त हो जायगा। भगवान् कहते हैं—जहाँ जाकर मनुष्य नहीं लौटता, वह मेरा परम धाम है।

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

(गीता १५। ६)

वास्तवमें फलरूपमें वह एक ही चीज है। वह चीज ही अनेक प्रकारसे समझायी गयी है। ऐसी अलभ्य चीज जिसके बाद कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रहता और सारे दुर्गुण-दुराचारोंका नाश होकर नित्य आनन्द और शान्तिकी प्राप्ति हो जाती है।

भगवान्‌की शरणसे वह पवित्र एवं उसकी वाणी परम पवित्र हो जाती है, यहाँतक कि उसके संगसे दूसरे पवित्र हो जाते हैं। वह गंगासे भी बढ़कर पवित्र हो जाता है। अतः इसे खयालमें

रखकर हमें उनकी शरणमें जाना चाहिये।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

इस भावसे सब प्रकार मन, वचन एवं कर्मसे भगवान्‌के शरण हो जाय। मनसे ध्यान, वाणीसे नाम-गुणोंका कीर्तन और शरीरसे प्रभुकी आज्ञाका पालन और सेवा करे। शरणका स्वरूप भगवान्‌ने स्पष्ट बतलाया है—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥

(गीता ९। ३४)

मेरे परायण (शरण) हो। मुझमें इस प्रकार आत्माको लगाकर मुझे ही प्राप्त होगा। यह शरणका स्वरूप बतलाया। इसमें चार बातें बतायीं—

१. मनको मुझमें लगा। २. मेरा भक्त बन। भक्त भक्ति करनेवालेको कहते हैं। भक्ति है ईश्वरमें परम अनुराग। यानि मुझमें अनुराग करनेवाला बन। ३. मेरी पूजा कर। ४. मुझे नमस्कार कर।

इन चारोंमेंसे एक बातके करनेसे भी कल्याण हो जाता है, परन्तु चारों करनेसे और भी शीघ्र प्राप्ति हो जाती है। जैसे एक हौदमें चार नाले हैं, यदि एक नालेसे चार घंटेमें हौद भरता है, वही हौद यदि चारों नाले खोल दिये जायँ तो एक घंटेमें भर जाता है।

भगवान्‌में ही प्रेम करे, भगवान्‌की ही भक्ति करे, भगवान्‌की ही पूजा करे, भगवान्‌को ही नमस्कार करे। इन चारोंमें प्रत्येकसे मुक्ति बतलायी गयी है। '**मन्मना भव**' और कोई शर्त नहीं, केवल भगवान्‌में मन लगा दे।

यहाँ भगवान्‌के चिन्तनके सिवाय कोई बात नहीं है। निरन्तर चिन्तन बिना प्रेमके नहीं हो सकता। पर यदि किसी कामनाको लेकर भी निरन्तर चिन्तन करोगे तो तुम्हें और कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं है। भगवान् कहते हैं—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

(गीता ९। २९)

मैं सब भूतोंमें समभावसे व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है, परन्तु जो प्रेमसे मेरा भजन करता है, वह मेरे हृदयमें मूर्तिमान् होकर रहता है और मैं उसके हृदयमें मूर्तिमान् होकर रहता हूँ।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥
यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥

(गीता ९। २६—२८)

जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ।

हे अर्जुन! तू जो कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दान देता है और जो तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर।

इस प्रकार, जिसमें समस्त कर्म मुझ भगवान्‌के अर्पण होते

हैं—ऐसे संन्यासयोगसे युक्त चित्तवाला तू शुभाशुभ फलरूप कर्मबन्धनसे मुक्त हो जायगा और उनसे मुक्त होकर मुझको ही प्राप्त होगा।

अर्पण करना यही है कि जो कुछ करे भगवान्के लिये करे, जो चीज भगवान्के लिये नहीं हो उसे नहीं करे।

भोजन भी भगवान्के लिये करे; क्योंकि शरीरसे भजन करनेके लिये शरीरको भोजन देना है। भोजनका उद्देश्य शरीर-निर्वाह है, निर्वाहसे भजन और भजनसे प्रभु प्रसन्न हैं ही। इससे उच्च भाव यह है कि स्वामीके कहनेपर स्वामीकी प्रसन्नताके लिये खाता हूँ, स्वामी भगवान् नाराज न हों, यह समझकर खाये। स्वामीके सन्तोषके लिये ही खाना है, यह अर्पण हुआ।

जप-तप सब कुछ स्वामीके लिये किया जाता है, जो कुछ तू करता है, वह सब भगवान्के अर्पण कर दे।

अपनी बागडोरको भगवान्के हाथमें सौंप दे। सारी क्रिया भगवान्के अर्पण कर दे तो भगवान्की प्राप्ति हो जाती है। अपराधी व्यक्ति चरणोंमें गिरता है तो भला व्यक्ति उसे भी क्षमा कर देता है। इन सब बातोंसे यही सिद्ध होता है कि भगवान्की शरणसे मुक्ति हो जाती है।

एक पुष्प अर्पण करनेसे भगवान् आ जाते हैं। भगवान् पत्र, पुष्प सब स्वीकार करते हैं। गजेन्द्रने एक पुष्प भेंट किया, भगवान् प्रसन्न हो गये, गजेन्द्रको बचा लिया। भीलनीके बेर खाये, उसकी इतनी प्रशंसा की कि माता कौशल्याके पास भी इतना आनन्द नहीं आया। भगवान् कहते हैं, जो भी प्रेमसे देता है, उसे मैं साक्षात् प्रकट होकर खाता हूँ।

रन्तिदेवके जल देनेसे भगवान् प्रकट हो गये। पूजाकी एक

चीज देनेसे भी भगवान् प्रकट हो जाते हैं, उद्धार कर देते हैं। भगवान्का चिन्तन-ध्यान करना सबसे उत्तम है।

प्रश्न—आपने बतलाया, परन्तु हम निरन्तर ध्यान एवं भक्तिमें असमर्थ हैं। पूजा एवं भक्ति सबमें प्रेमकी शर्त है, हमें तो ऐसा बतायें जो इससे भी सुगम हो।

उत्तर—इससे सुगम उपाय बताया जाता है। निरन्तर चिन्तन वशकी बात नहीं है, परन्तु नामका जप तो हो सकता है, इसीसे उद्धार हो जाता है, नामजप यानि भजन होना चाहिये। भगवान् कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(गीता ९। ३०)

अतिशय दुराचारी भी यदि अनन्यभावसे निरन्तर मुझे भजता है तो वह साधु ही माननेयोग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। और तो सब ठीक है पर इसमें भी निरन्तरता लगा दी।

निरन्तर नहीं कर सके, किन्तु अपनी ओरसे निरन्तर करनेकी चेष्टा करे। घंटे-दो घंटे, चार घंटे एकान्तमें बैठकर जप करे, इसका नाम जपयज्ञ है। यज्ञ परमात्माकी प्राप्तिके साधन हैं। **'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि'** जपयज्ञ मैं स्वयं ही हूँ यानि जपयज्ञ श्रेष्ठ है। अपने जपयज्ञको ले सकते हैं। यह भी नहीं हो तो भगवान् कहते हैं कि अन्तकालमें मेरा नाम उच्चारण कर लो—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

(गीता ८। १३)

जो पुरुष 'ॐ' इस एक अक्षररूप ब्रह्मको उच्चारण

करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मुझ निर्गुण ब्रह्मका चिन्तन करता हुआ शरीरको त्याग कर जाता है, वह पुरुष परमगतिको प्राप्त होता है।

तस्य वाचकः प्रणवः। परन्तु यदि अन्त समयमें स्मृति नहीं रही? यह तो बहुत कड़ा है, अन्त समयमें स्मृति हो इसका क्या भरोसा?

हम मृत्युके पूर्व ही भगवत्प्राप्ति कर लें तो औरोंकी भी सहायता कर सकते हैं। मरते समय स्मरण हुआ तो अकेलेका ही कल्याण हुआ। इससे भी सुगम मार्ग चाहो तो शीघ्र कल्याण होनेके दो उपाय हैं—मरते समय एक ही नामसे कल्याण हो जाता है या प्रेमसे कल्याण हो जाता है, इसलिये हर समय नाम-जप करना चाहिये।

जबहि नाम हिरदे धर्‌यो भयो पापको नास।
जैसे चिनगी अग्नि की परी पुराने घास॥

परन्तु धारण करना चाहिये मनमें, एक बार ही हृदयमें धारण करनेका यह महत्त्व है।

शास्त्र कहता है कि सब पापोंका नाश हो गया तो मान लो कि सब पापोंका नाश हो गया। आचरण बुरे हैं तो विश्वास करो कि अब सब दुर्गुण-दुराचार दूर हो जायँगे। श्रद्धासे बड़ा लाभ होता है। श्रद्धा नहीं हो तो भी कल्याण हो जायगा।

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

चाहे किसी तरह करो प्रेमसे या खीजकर, जपका ऐसा प्रभाव है कि दसों दिशाओंमें मंगल और शान्ति प्राप्त हो जाती है।

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥

रामनामको जीभपर रखोगे तो अन्धकारका नाश होकर हर जगह भगवान् दीखने लगेंगे, वशमें भी हो जायँगे।

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥
अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥

भगवान्से बढ़कर उनके नामकी महिमा है—

राम भगत हित नर तनु धारी। सहि संकट किए साधु सुखारी॥
नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मंगल बासा॥

नामजपमें कोई परिश्रमका काम नहीं है, नामके जपसे जापक भक्त बन जाता है।

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥

भगवान्ने अहिल्याका उद्धार कर दिया इसमें क्या बड़ी बात है, नामने करोड़ोंकी मति सुधारकर उत्तम गति दे दी। कलियुगमें तो एक नाम ही उपाय है यानि सबसे बढ़कर नाम ही है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैवकेवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

सतयुगमें ध्यान आदिसे जो गति होती है, वह कलियुगमें नामसे हो जाती है—

कलिजुग केवल नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि भव उतरहु पारा॥
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥

कलियुगमें सबसे सरल और सीधा उपाय भगवान्के नामका ही जप है। कुछ नहीं बने तो रात-दिन, उठते-बैठते, खाते-चलते हर समय भगवान्का नाम जपो।

केशव केशव कूकिये न कूकिये असार।
रात दिवसके कूकते कबहुँ तो सुने पुकार॥

हे केशव, हे केशव! इस तरह करुणाभावसे पुकार करनी चाहिये।

आपने यह बताया, यह तो ठीक है, भजनकी ऐसी ही महिमा है। पर भजन नहीं होता इससे भी कोई सरल उपाय हो तो बतलाना चाहिये। इससे भी सरल उपाय यह है कि भगवान्‌से बढ़कर और कोई वस्तु नहीं है। वे बड़े दयालु हैं, हमें यह ज्ञान हो जाय तो भजन निरन्तर हो सकता है। भजन न भी हो तो भी भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है।

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥

(गीता १५। १९)

हे भारत! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्त्वसे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है।

यह बात यदि हृदयमें जँच जाय कि भगवान्‌से बढ़कर और कुछ नहीं है तो भगवान्‌का निरन्तर भजन होगा और उनकी प्राप्ति हो जायगी। सत्संगके द्वारा भगवान्‌को सबसे बढ़कर समझा जा सकता है। जैसे हीरेका मूल्य जौहरी समझा सकता है, इसे महात्मा ही समझा सकते हैं।

भगवान्‌का तत्त्व, रहस्य, दया, प्रभावके ज्ञाता भक्त होते हैं, अतः वे ही समझा सकते हैं। यह जाननेसे ही कल्याण हो जाता है।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५। २९)

भगवान् कहते हैं—मुझे सम्पूर्ण भूतप्राणियोंका सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्वसे जानकर शान्तिको प्राप्त होता है।

भगवान्‌की सबपर कृपा है, उनका हमारे मस्तकपर हाथ है।

इसे हम मानते नहीं, अपितु मुँहसे कहते हैं। जिसके सिरपर वायसरायका हाथ है, वह कितना आनन्द मानता है, फिर जिसके सिरपर भगवान्‌का हाथ है उसकी शान्तिका क्या ठिकाना है! भगवान्‌के स्पर्शसे ही बड़ी शान्ति मिलती है। यह अनुभव हो जाय कि भगवान्‌का हमपर हाथ है, उनकी बड़ी भारी दया है, प्रेम है तो फिर आनन्द-ही-आनन्द है।

यह होना सत्संगसे ही सहज है। सत्संगसे सभी बातें हैं। भजनसे भी बढ़कर किसी अंशमें सत्संग है। भजन सत्संगसे ही होता है। हमने महापुरुषोंसे, पुस्तकोंसे भगवान्‌की महिमा सुनी है, दोनों ही सत्संग है। साधकोंका संग दो नम्बर है एवं उनकी लिखी पुस्तकोंका संग तीन नम्बरका सत्संग है।

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥

भगवान्‌में प्रेम होनेके लिये सबसे बढ़कर सत्संग है। महापुरुषोंका संग भी सत्संग है, उसके बाद पुस्तकों (शास्त्रों)-का संग सत्संग है।

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥
एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
तुलसी संगत साधु की, कटै कोटि अपराध॥

करोड़ों अपराध अर्थात् जो पापसे भी बढ़कर होते हैं, वे भी छः मिनट (आधीकी आधी घड़ी)-में नष्ट हो जाते हैं। सत्संगसे निरन्तर भजन होता है। भजनसे ध्यान होता है और ध्यानसे भगवान् मिल जाते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि परमात्माकी प्राप्ति ही बढ़कर है, पर सत्संग परमात्मासे बढ़कर कैसे है?

सत्संगसे भजन, भजनसे ध्यान होता है, इस नातेसे ध्यान बड़ा हुआ किन्तु इसमें सभी अपने-अपने स्थानमें बड़े हैं, बड़ा-छोटा कोई नहीं है। एक दादा है, एक उसका पुत्र है और एक उसका पुत्र है। उनमें पूज्य दादा है, उससे कम पिता है, सबसे कम लड़का है। पर यदि दादा पचास रुपये कमाये, पिता सौ रुपये और लड़का हजार रुपये कमाये तो उनमें कौन बड़ा है? कमानेमें तो पोता बड़ा है पर पूज्यतामें दादा बड़ा है। दादा पैदा नहीं होता तो लड़का कहाँसे पैदा होता। सत्संग दादा है, भजन बाप है, ध्यान पोता है।

मुक्तिसे भी सत्संग इसलिये बड़ा है कि मुक्ति तो एककी होती है, पर सत्संगसे लाखोंकी मुक्ति हो सकती है।

एक भाई कमाकर खाता है, एक सदावर्तमें जाकर खाता है और एक आदमी सदावर्त बाँटकर भोजन करता है। इनमें तीनोंकी क्षुधा-निवृत्ति बराबर होती है, फिर भी हम सदावर्त बाँटनेवालेको उत्तम मानते हैं।

भगवान् शंकर काशीमें मुक्तिका सदावर्त बाँटते हैं। एक मुक्ति स्वयंके साधनसे हो और एक वह कि अपने साथ हजारोंकी मुक्ति करे। भगवान्‌ने कहा है—जो गीताशास्त्रको भक्तोंको धारण कराता है, प्रचार करता है, उससे बढ़कर मेरा प्यारा भक्त न है और न होगा।

एक सेठने सदावर्त लगा रखा था। वहाँ हजारों लोग सदावर्त लेते। उसके सेवकको बाँटनेमें बड़ा आनन्द आता, यहाँतक कि भोजन करना भी भूल जाता तो सेठ आकर कहता कि तुम जाओ मैं कर लूँगा। सेवक कहता—प्रभो! मेरे रहते आप क्यों? इन्हें भोजन करानेमें मुझे जो आनन्द आता है, वह प्रसन्नता मुझे

भोजन करनेमें भी नहीं आती। इन्हें निपटाकर भोजन करूँगा।

मुक्तिको त्यागकर सत्संग करने-करवानेमें अधिक लाभ है। सत्संग करने-करानेवाले सभी भगवान्‌के दरबारमें सदावर्त पानेवाले हैं। वह महात्माके व्यवहारको देख-देखकर मुग्ध होता है और स्वयं वैसा बनना चाहता है। जब महात्मा बन जाता है तो फिर लाखोंको मुक्त कर देता है। वह दूसरोंको मुक्त करना चाहता है।

एक महापुरुष भगवान्‌के धामको जा रहा था। रास्तेमें नरकके पाससे विमान निकला। वहाँ नरकके जीवोंकी **'त्राहि माम्, त्राहि माम्'** ध्वनि आ रही थी, उन्होंने वहाँ विमान ठहराया। नारकीय जीवोंने कहा कि आपके ठहरनेसे यहाँका दुःख मिट गया, आग शीतल हो गयी, यमराजकी तलवार भोथरी हो गयी, आपका इतना भारी प्रभाव हो रहा है कि दुःखका नाश होकर बड़ी शान्ति मिल रही है। महापुरुषने भगवान्‌के दूतोंसे कहा कि मुझे वहाँ जाकर क्या करना है, मैं यहीं रहूँगा, तुम जाओ। भगवान्‌के दूतोंने पूछा कि भगवान् पूछें तो क्या कहें! कहना कि मुझे यहीं आनन्द, शान्ति है, यहीं सबसे बढ़कर परमधाम है। भगवान् आपको बुलायें तो? इन जीवोंको ले चलें तो आ सकता हूँ। भगवान्‌ने सब जीवोंको बुला लिया। वे सब-के-सब परमात्माके धाममें चले गये। महापुरुष तो वैकुण्ठकी अपेक्षा नरकमें रहना चाहते हैं, क्योंकि वैकुण्ठमें तो सुख है ही, पर नरकके जीव यदि सुखी हो जायँ और सत्संग हो तो बड़ा ही अच्छा है।

अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू॥

जहाँ सूर्य हैं वहीं प्रकाश है। रामसे ही अवधकी संज्ञा है। जहाँ भगवान्‌के भक्त हैं, सत् चर्चा है, नाम, गुण, प्रभाव, प्रेमकी

बातें होती हैं, वहीं भगवान् साक्षात् विराजमान हैं, वही परमधाम है, अपितु परमधामसे भी बढ़कर है।

भगवान् अवधमें ऐसे रमे, प्रेममें इतने मुग्ध थे कि ग्यारह हजार वर्ष क्षणकी तरह बीत गये। फिर ब्रह्माजीने कालको भेजा कि समय हो गया। जब भगवान् वनवाससे वापस आते हैं तब सारा अवधरूपी समुद्र भगवान्‌को देखनेके लिये उछल रहा है। भगवान् कहते हैं।

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

हे नारद! मैं वैकुण्ठमें और योगियोंके हृदयमें नहीं रहता, जहाँ मेरे भक्त भजन करते हैं, मैं वहीं रहता हूँ। जहाँ भगवान्‌की बातें, उनका नाम, कथा, कीर्तन होता रहे तो वह नरक भी अवधके समान हो जाता है।

संसारमें सबसे बढ़कर सत्संग है। प्रभुसे यही कामना करें कि आपके प्रेम, प्रभाव, लीला, धामकी बातें हम हर समय करते रहें, हम और कुछ भी नहीं चाहते, दर्शन भी नहीं चाहते, क्योंकि उसके तो हम अधिकारी नहीं हैं।

हमें यहाँ आये महीने हो गये, यहाँका दृश्य कितना वैराग्य और आनन्दका है। मानो स्वाभाविक ही आनन्द और प्रेमका समुद्र हमपर उलट गया हो, हम आनन्द-शान्तिमें मग्न हो गये हैं। यहाँका चित्र भी समय-समयपर वैराग्य-उपरति होकर भगवान्‌के ध्यानमें सहायक होगा। यह बात युक्ति और अनुभवसे मालूम होती है।

हम यहाँ इकट्ठे हुए, यह प्रभुकी हमपर बड़ी दया है एवं आपलोगोंको निमित्त बनाकर बातें कही गयीं, अतः आपकी भी

मुझपर बड़ी कृपा है। आपकी दूसरी दया यह है कि वक्ता जो कुछ कहता है, सुननेवालेसे वक्ताको अधिक आनन्द मिलता है, और कहनेके कारण वक्ता उन बातोंको पालन करनेके लिये बाध्य होता है। श्रोताओंके कारणसे उसके मनमें नयी-नयी बातें उत्पन्न होती हैं, यह भी आपकी कृपा है और भगवान्‌की सबपर कृपा है ही। मैं आपकी दयाका आभारी हूँ और ऋण चुकानेमें असमर्थ हूँ, भगवान् ही इस ऋणको चुका सकते हैं।

वक्तासे पूरा लाभ नहीं मिलता तो उसका ऋण वक्तापर रहता है। प्रभु चाहें तो वक्ताको ऋणसे मुक्त कर सकते हैं, प्रभु जो कुछ करें उसमें आनन्द मानना चाहिये। ऋणसे मुक्त करें चाहे नहीं करें—दोनोंमें ठीक है।

सुननेवाले अपनेको ऋणी मानते हैं, पर वक्ताको अपनेको अधिक ऋणी और भगवान्‌की दया माननी चाहिये। इस प्रकार माननेसे वक्ता कृतघ्न नहीं होता।

आपलोगोंसे मिलकर चर्चा होती है, यह प्रभुकी और आपलोगोंकी दया है। प्रभुसे वरदान माँगे तो यही माँगे कि सब आपके भक्त बन जायँ। सभी आपके गुण-प्रभाव-लीलाकी बातें करें, इतना नहीं दे सकें तो जितना दें उतना ही उत्तम है।

भगवान्‌ने एक भक्तपर प्रसन्न होकर वर माँगनेको कहा। भक्तने कहा कि मेरी माँगनेकी इच्छा हो तो नष्ट कर दें। इसपर भी प्रभुने बार-बार आग्रह किया तो भक्तने कहा कि सब आपके भक्त बन जायँ और सभीको आपकी प्राप्ति तथा आपमें अनन्य प्रेम हो जाय। भगवान् बोले ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि इनका पुण्य तो फल नहीं चाहनेसे नष्ट हो सकता है पर पाप कौन भोगेगा? भक्तने कहा, मैं भोगूँगा। भगवान्‌ने कहा, ऐसा नहीं हो

सकता। भक्त बोला, तो सबको क्षमा कर दें। भगवान्‌ने कहा—यह असम्भव है। भक्त बोला—आप असम्भवको भी सम्भव कर सकते हैं। परमात्मा नहीं कर सकें तो और कौन कर सकता है!

भगवान् बोले—इसके लिये मैं लाचार हूँ, ऐसा कानून नहीं है। भक्त बोला—आपको यह नहीं कहना चाहिये था कि जो चाहो माँग लो, आप जो दे सकते थे उसे ही देनेके लिये कहना चाहिये था। अत: आप उचित समझें तो सबका कल्याण कर दें, अन्यथा आप भविष्यमें किसीको भी कुछ माँगनेके लिये न कहियेगा और यदि कहें तो आपको उसकी बात रखनी चाहिये। आप सर्वशक्तिमान् हैं। आप ही लाचार हैं तो और कौन कर सकता है। भगवान्‌ने कहा—मैं हारा तुम जीते।

भक्त—हार तो हमारी ही है, क्योंकि मेरी बात स्वीकार नहीं हुई। इससे पता चलता है कि सत्संगका क्या मूल्य है? इसीलिये कहा है—

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

दुःखोंका विनाश एवं परमानन्दकी प्राप्ति

संसारमें देखें तो सभी पदार्थोंमें दुःख है। लखपति, करोड़पतिको भी कोई-न-कोई दुःख होगा ही। पूछनेपर वह कह देगा कि बहुत दुःख है। इसी प्रकार राजाके पास भी यही बात है। महात्माके पास सुख मिलेगा, उसे सदा सुख है।

सदा दिवाली संतके आठों पहर अनन्द।

ऐसे व्यक्ति मिलते हैं, जिन्हें दुःख नहीं है। अतः हमें भी दुःखोंके विनाश और परमानन्दकी प्राप्तिके लिये चेष्टा करनी चाहिये। इसके लिये शास्त्रोंमें उपाय बतलाये गये हैं अथवा जिसे हर समय शान्ति रहती है उससे पूछकर उसके अनुसार करे।

भगवान्‌की भक्ति, निष्कामकर्मयोग, ध्यान आदिसे मुक्ति मिलती है। श्रद्धासे भी शान्ति मिलती है। **'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्'** श्रद्धासे ज्ञान एवं ज्ञानसे शान्ति मिलती है। **'अशान्तस्य कुतः सुखम्।'**

भगवत्प्राप्तिके लिये कोई भी उपाय करके देखना चाहिये। कुछ दिन करके देखें, लाभ नहीं हो तो छोड़ दें, वैद्य-डॉक्टर फीस भी लेते हैं पर महात्मा फीस नहीं लेते। हम रात-दिन जलते रहते हैं, उस जलनको मिटानेके लिये उपाय अवश्य करना चाहिये। यह बड़ा सरल उपाय है कि हम जिसे सुख पहुँचाते हैं उसकी आत्माको देखकर हमें सुख मिलता है। दूसरेकी प्रसन्नतासे प्रसन्न होना चाहिये।

जैसे किसान खेती करता है, खेती करनेपर एक मनसे हजार मन पैदा होता है। एक भाई अपने किसान मित्रके यहाँ जाकर ठहरा, उसे खेती किस तरह करे पता नहीं था। वहाँ गेहूँ, चनाका ढेर देखा तो पूछा कि हमारे यहाँ भी हो सकता है क्या? हो सकता है। सौ रुपयेका माल हजारोंका हो जायगा—ऐसा सोचकर उसने गहना बेचकर सौ रुपया हलवालेको दिया

प्रवचन—दिनांक ४-६-१९४०, दोपहर, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

और सौ रुपया अपनी आजीविकाके लिये रख लिया।

गेहूँ बोया तो एक-डेढ़ इंच घास जैसा उग आया। सब उग आये तो रोने लगा कि हमारा पैसा मिट्टीमें गया। दूसरोंसे कहा कि घास-ही-घास हो गया, लोगोंने कहा कि घास नहीं है, जो घास है उसे निकाल दो एवं पशु न चर जायँ, इसकी रखवाली करना।

पशुओंकी रक्षाके लिये बाड़ लगा दी। पौधे बड़े हो गये, दाने पड़ गये, पर कच्चे हैं। उस समय विश्वास हो गया और बड़ा आनन्द हुआ। अब चिड़ियोंसे रक्षा करने लगा। आखिरमें हजारों मन अन्न हो गया।

गेहूँ, चनाकी खेती करनेके लिये उन्हें धूलमें मिला दिया, इसी प्रकार अपने पास जो कुछ है उसे मिट्टीमें मिला दे। परमात्माकी प्राप्तिके साधनमें इतने तत्पर हो जाओ कि ऐश, आराम और सुखवाली सब वस्तुओंको मिट्टीमें मिला दो। बोना ही साधन है। चित्तमें वैराग्यका उत्पन्न होना अंकुर फूटना है। घासका बड़ा होना उपरति है, उसके बाद धान हुआ यानि ध्यान हुआ, ध्यान पकनेपर परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। इसीलिये भगवान्‌ने कहा है—

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥

(गीता १३। १)

हे अर्जुन! तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानीजन इस शरीरको क्षेत्र तथा इसको जो जानता है उसे क्षेत्रज्ञ कहते हैं।

यह शरीर खेत है, इस खेतको जाननेवाला आत्मा क्षेत्रज्ञ है। खेतमें जैसा बीज बोया जाता है वैसा ही फल होता है। आम बोनेपर आम, बबूलसे बबूल पैदा होगा। अतः ऐसा फल बोना चाहिये जिसका फल सुख हो। जो बुरा कार्य करता है वह दुःखी रहता है। प्रभुकी आज्ञा-पालनसे सुख-शान्ति मिलेगी। हमें

सद्‌गुण-सदाचारका पालन और ईश्वरकी भक्ति करनी चाहिये। उत्तमका फल उत्तम ही होगा।

संसारमें सबसे बढ़कर आनन्द महात्माको है। उससे बढ़कर परमात्माको है, हमें उसी आनन्दके बीजको बोना चाहिये। परमात्माका नाम लेना ही बीज बोना है और आगे जाकर वह विस्तारको प्राप्त हो जाता है, फिर हमें परमात्माका ध्यान करना चाहिये। हमें सोचना चाहिये कि मरनेके बाद भी आत्मा रहता है।

जैसे हम कल कलकत्ता जानेवाले हैं तो आजसे ही व्यवस्था कर रहे हैं, उसी तरह हमें मरनेके बाद भी सुख मिले, यह व्यवस्था करनी चाहिये। गधे, कुत्ते यह व्यवस्था नहीं कर सकते। लाख प्रयत्न करनेपर भी कुत्ते, गधेको यह बात नहीं समझायी जा सकती। समझायेंगे तो लोग हमें मूर्ख बतायेंगे।

इस समय हम मनुष्य हैं। विचार करना चाहिये कि हमारा धन, स्त्री, पुत्र, मान, बड़ाई, शरीर-सब पराये हैं, ये हमारे साथ जानेवाले नहीं हैं। हम देखते भी हैं कि यह शरीर यहीं जला दिया जाता है।

मुर्देमें मन, बुद्धि, प्राण नहीं हैं। अतः मन, बुद्धि, प्राण जाते हैं, आत्मा एवं इन्द्रियाँ भी जाती हैं। कान, नाक, आँख तो गोलक मात्र हैं, क्योंकि देखा जाता है कि मनुष्य इन्द्रियाँ होनेपर भी बोल नहीं पाता, देख भी नहीं पाता, मरते समय देखकर पहचान भी नहीं पाता, दो मिनट बाद फिर पूछा जाय तो फिर नहीं पहचानता।

ये सब शक्तियाँ हृदयमें एकत्र हो जाती हैं। पाँच प्राण, दस इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि ये सत्रह चीजें साथ जाती हैं, अतः इनका सुधार हमारे साथ जायगा, इनमें जो चीज भर देंगे वही साथ जायगा।

नेत्र द्वार हैं, नेत्रोंके सामने जो चित्र आते हैं वे सारे नेत्रोंके द्वारा

जाकर भरे जाते हैं। जैसे कैमरा वैसा ही चित्र खींच लेता है जैसा उसके सामने आता है। इसी तरह आँखद्वारा मन उस चित्रको पकड़ लेता है। स्वप्न भी इसी प्रकारकी भरी हुई चीजोंका आता है, दोनों आँखोंके द्वारा हम रात-दिन चित्र भर रहे हैं। भगवान्‌की मूर्ति, महात्माके दर्शन, वैराग्योत्पादक एवं उत्तम भाव पैदा करनेवाले चित्रोंको भरना चाहिये।

जैसे फोनोग्राममें गाना भरा जाता है, उसी तरह हमारे कान हैं। जैसे शब्द भरोगे मरनेके बाद जहाँ जाओगे वैसे ही शब्द बोलोगे। अच्छे पुरुषोंके मुँहसे गाली-गलौज नहीं निकलती। भगवान्‌के नाम, स्वरूप, तत्त्व-रहस्यकी बातोंको ही भरना चाहिये और इन्हीं बातोंको पढ़ना चाहिये। गन्दे चित्र और गन्दी बातोंको न देखें न पढ़ें।

इसी प्रकार सभी इन्द्रियोंके द्वारा अच्छी चीज अपने अन्दर भरना चाहिये। कोई परस्त्रीको बुरी दृष्टिसे देखता है तो वह पापको भर रहा है। हम जैसा बीज भरेंगे वैसा ही फल मरनेके बाद प्राप्त होगा।

बुद्धिके द्वारा भगवद्विषयक ज्ञान एवं प्रेम भरे बुद्धिका जितना सुधार होगा उतना ही साथ जायगा। पूरा सुधार होनेपर यहीं ब्रह्मकी प्राप्ति हो जायगी।

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्॥

(गीता ५। २६)

काम-क्रोधसे रहित, जीते हुए चित्तवाले, परब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार किये हुए ज्ञानी पुरुषोंके लिये सब ओरसे शान्त परब्रह्म परमात्मा ही परिपूर्ण हैं।

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६। २१-२२)

इन्द्रियोंसे अतीत, केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा ग्रहण करनेयोग्य जो अनन्त आनन्द है; उसको जिस अवस्थामें अनुभव करता है और जिस अवस्थामें स्थित यह योगी परमात्माके स्वरूपसे विचलित होता ही नहीं।

परमात्माकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और परमात्मप्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित योगी बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता।

बुद्धिग्राह्य सुखको प्राप्त करना चाहिये। हम संसारमें सुख चाहते हैं, चाहते-चाहते ही मर जाते हैं, पर वास्तविक सुख कभी नहीं मिलता। जब परमात्माकी प्राप्तिरूपी सुख मिल जायगा, फिर दूसरे सुखकी इच्छा नहीं रहेगी। उस समय जीते-जी ही पूर्ण आनन्दकी प्राप्ति हो जायगी। उस समय आपके शरीरको काटा भी जायगा तो दुःख नहीं होगा। ये दो बातें आ जायँ तो समझ लो कि पूर्ण आनन्दकी प्राप्ति हो गयी। शरीरपर चोट पड़नेपर भी महसूस न हो तो समझ लो कि पूर्ण आनन्दकी प्राप्ति हो गयी।

एक बार पूर्ण आनन्द प्राप्त हो जाय और फिर कभी घटे नहीं तो समझ लो कि वह आनन्द प्राप्त हो गया।

बुद्धिमें शोक क्यों होता है? चित्तकी अस्थिरतासे। जिस प्रकार चित्त स्थिर हो वही करे और चित्तको निर्मल कर दे। मैलापन हट जायगा तो खूब शान्ति मिलेगी। बुद्धिको सूक्ष्म बनाना चाहिये, क्योंकि सूक्ष्म बुद्धिद्वारा ही परमात्माका अनुभव

होता है। मल दूर होनेपर बुद्धि तीव्र हो जाती है।

हृदयके भीतर ज्ञान, बोध, शक्ति, चेतनताको खूब बढ़ाना चाहिये। पूरी ही बढ़ गयी तो यहीं कल्याण हो जायगा अन्यथा साथमें जायगी। यही सुधार सुधार है, इसीमें आत्माकी उन्नति है। उन्नति करो, अन्यथा पछताना पड़ेगा और उस पश्चात्तापका भी कोई मूल्य नहीं है। अतः जबतक देहमें प्राण हैं, अपना काम बना लेना चाहिये। इसीमें तुम्हारी बुद्धिमत्ता है।

हमलोगोंको भोग, प्रमाद, आलस्य और पापसे साधनमें बाधा प्राप्त होती है। पर हमें इनमें सुख प्राप्त होता है, इसीलिये हम साधन नहीं कर पाते।

जैसे हमें छः घण्टे सोना चाहिये, यदि अधिक नींद आये तो निद्राके साथ युद्ध करना चाहिये कि नहीं सोवेंगे। यह निद्राके सुखको धूलमें मिलाना है।

ताश, चौपड़, सिनेमा आदि प्रमादमें सुख मिलता है, इस तामसी सुखका त्याग कर दें। इस सुखको धूलमें मिला दें। इसी प्रकार पाँचों विषयोंसे सुख मिलता है। पुष्पमाला, इत्र, फुलेलसे सुख मिलता है, इस सुखको त्याग दें यानि धूलमें मिला दें।

नित्य कइयोंके पुत्र मरते हैं, हमें दुःख नहीं होता, पर हमारे पुत्र-स्त्रीके मरनेपर दुःख होता है। तात्पर्य यह है कि ममता और प्रीतिका त्याग कर दे।

वास्तवमें प्रीति और ममताका त्याग ही त्याग है। स्वरूपसे त्याग दिया, पर मनमें प्रीति-ममता बनी हुई है तो त्याग नहीं है।

मनुष्यजन्मकी श्रेष्ठता

मनुष्यको यह विचारना चाहिये कि अबतक जितना समय जिस प्रकार बीता है, क्या उसी तरह आगे बीतनेपर परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी? उत्तर मिलेगा नहीं। अतः अपना समय तेजीके साथ साधनमें बिताना चाहिये। ऐसी परिस्थितिमें भगवान्‌से रोकर प्रार्थना करनी चाहिये कि मेरी क्या दशा होगी। मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हूँ, मैं क्या करूँ। जैसे कोई आदमी नदीके बीच पत्थरपर खड़ा है, पानी बढ़ रहा है, तैरना नहीं जानता तो वह कैसी चेष्टा करता है, वैसी ही चेष्टा करे। दिन-प्रतिदिन समय घट ही रहा है और समय सन्तोषप्रद नहीं बीत रहा है, ऐसी स्थितिमें प्रार्थना करनेके सिवाय और क्या उपाय है।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

(गीता २। ७)

इसलिये कायरतारूप दोषसे उपहत हुए स्वभाववाला तथा धर्मके विषयमें मोहितचित्त हुआ मैं आपसे पूछता हूँ कि जो साधन निश्चित कल्याणकारक हो, वह मेरे लिये कहिये; क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये आपके शरण हुए मुझको शिक्षा दीजिये।

करुणाभावसे सच्चे हृदयसे अपने पापों, बुरी आदतोंको देखकर भगवान्‌से प्रार्थना करें। इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है। अपनी दीन दशा देखकर स्वाभाविक ही करुणाभाव हो जाता है एवं दिन-प्रतिदिन अपनी उन्नति करें। आजसे कल, कलसे परसों अधिक तत्परताके साथ जोरसे प्रयत्न करें। भगवान्‌की कृपासे सफलता होगी ऐसा समझें।

फिर यह विचार करें कि मेरा क्या कर्तव्य है? जिससे

प्रवचन—दिनांक ४-६-१९४०, सायंकाल, रानी कोठी, स्वर्गाश्रम।

मनुष्यजन्म शीघ्र सफल हो जाय। कर्तव्यपर बुद्धि लगाये तो ज्ञान हो जायगा। गंगाजलको देखकर विदित होता है कि यह पीनेकी चीज है। प्रत्येक पदार्थ बतला देता है कि मैं किस कामका हूँ। चादर बतलाती है मैं ओढ़नेकी चीज हूँ। मनुष्यको अपने शरीरकी ओर भी देखना चाहिये, यह शरीर किस कामकी चीज है। शरीरका चमड़ा ऐसा नहीं है जो मरनेके बाद काम आ सके। शरीरमें कोई ऐसी चीज नहीं है जो काममें आ सके। वृक्षको देखनेसे ज्ञान होता है कि इसके पुष्प सूँघने और लकड़ी जलानेके कामकी है। वृक्षको शिक्षा दे तो वह सुन नहीं सकता, वह पशुओंसे भी गया बीता है, इसी प्रकार सारे जड़-चेतन पदार्थ देखनेसे उनके बारेमें मालूम हो जाता है।

मनुष्य सबकी सेवा कर सकता है, पर गधा-घोड़ा नहीं कर सकता। मनुष्यके पास सेवा करने एवं काम करनेके बहुत साधन हैं। सबसे उत्तम प्राणी मनुष्य ही प्रतीत होता है। मनुष्य ही सबको सुख पहुँचा सकता है। ऐसा मनुष्यशरीर हमें मिला है, अतः चींटीसे ब्रह्मातक सबकी तन, मन, धन सब प्रकारसे सेवा करे।

अपने अधिकारकी चीजका बहुत अच्छा उपयोग करे। हमारे पास जो कुछ सामग्री है, बुद्धि-विवेकसे उसका सदुपयोग करना चाहिये। अपनी बात माननेवाले प्रेमी आदि सबको ऐसे काममें लगा दे जिससे रास्ता जल्दी तय हो जाय। सारा समय और सारी तेजी इसी काममें लगा दे। अपना कर्तव्य यही है कि हमने जो काम आजतक नहीं किया यानि परमात्मप्राप्ति, वह करनी है। सब योनियोंमें जा-जाकर हमने सब प्रकारके भोग भोगे हैं। हमारी आत्माका उद्धार हो जाता तो यह दशा नहीं होती। परमात्माकी प्राप्ति नहीं हुई अन्यथा वापस नहीं आना पड़ता।

सबसे बढ़कर भगवान्‌की भक्ति है और भी ज्ञानयोग, कर्मयोग आदि साधन हैं। भक्ति सबसे सरल है, रात-दिन भगवान्‌की भक्ति करे।

प्रश्न—स्वप्नकी क्रिया और भोगका हेतु कौन है?

उत्तर—जिसमें सुख-दुःख होता है, वही भोग है। मनोराज्य वह है जिसमें वह आदमी किस प्रकारका है यह उससे मालूम होता है, पूर्वजन्म और इस जन्मका वह चित्र है।

प्रारब्ध भोगनेसे नष्ट होता है। संचित उपायसे भी नष्ट हो जाता है। एक आदमीने परस्त्री गमन किया, पाप लगा, उसमें आसक्तिके संस्कार पैदा हुए। एक आसक्ति जन्मी और एक पाप कर्म हुआ। पापका फल तो दण्ड हो जायगा। उस स्त्रीको देखते ही संस्कारकी तो केवल स्मृति हो जायगी। भोगरूप संस्कार तो फल भुगताकर समाप्त हो जाते हैं, पर वृत्तिरूप संस्कार रह गया। टिकटकी चोरी की, पापका तो दण्ड मिल जायगा। पर चोरीका स्वभाव पड़ गया वह संस्कार संचित रह गया।

एक वैश्यका पाँच वर्षका लड़का था, वह मिट्टीसे गौ बनाकर काटता था, तब पिताने सोचा कि यह ऐसा क्यों करता है। उन्होंने इस बारेमें एक महात्मासे पूछा उन्होंने बताया कि यह पूर्वजन्मका कसाई है, यह संस्कार है।

दण्डसे पाप तो नष्ट हो जाता है पर संस्कार नष्ट नहीं होते। प्रारब्ध पापकर्मके अंशका बनता है और जो स्वभाव, संस्कार होता है उसका प्रारब्ध नहीं बनता, वह संचितमें रहता है।

वृत्तिरूप संस्कार तो स्मृति पैदा करते हैं और स्मृतिसे नये कर्म पैदा होते हैं। संचितके दोनों हिस्से नष्ट हो जाते हैं, तभी मुक्ति होती है।

विश्वासघात कभी न करें

प्रत्यक्षमें जितनी इन्द्रियाँ हैं इनमें मैंने स्पर्शेन्द्रियको जितना कठिन समझा है इतना और किसीको नहीं। जबतक शरीरमें प्राण हैं, तबतक इस विषयमें कह सकना कठिन है।

इसमें भय है बेइज्जत होनेका, परलोक एवं घोर नरकमें जानेका तथा यह विचार करके ग्लानि होती है कि यह शरीर हाड़, मांस, मज्जाका पिटारा है।

इसमें बल, बुद्धि, वीर्य सबका नाश होता है एवं रोगका घर है। युक्तियोंसे सब समझनेपर भी मानसिक दोष घटना सम्भव है। अपनी स्त्रीके साथ मेरा वर्तमान समयमें कैसा व्यवहार है, इस विषयमें मैं कुछ भी नहीं कहता।

खाना, पीना, वाणीका संयम इनमें मैं कुछ भी कठिन नहीं मानता। जो कोई भी भाई मुझे पूछता है, उसे मैं यही सलाह देता हूँ कि विवाह करके ही संयमका पालन करो। अगर कोई आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन करता है तो मैं उसे इतनेमात्रसे ही महात्मा मानता हूँ। मैं तो यह मानता हूँ जो कामको जीत लेता है वह त्रिलोकीको जीत लेता है।

मेरा जब-जब कामके साथ युद्ध हुआ तब-तक स्पर्शके विषयमें मेरी विजय हुई है। मानसिक दोषके विषयमें उसकी विजय हुई।

इन्द्रियोंमें त्वचा इन्द्रिय बलवान् है, इन्द्रियोंसे मन बलवान् है। युवावस्था हो तो विवाहकी सलाह देनी चाहिये। आयु चालीससे

प्रवचन—दिनांक १६-३-१९३९, गोविन्दभवन, कलकत्ता।

ज्यादा हो तो विवाह नहीं करनेकी सलाह देनी चाहिये।

यह विषय एक भाईके विवाह करनेके विषयको लेकर चल गया। ज्यों-ज्यों मृत्यु निकट आती है, स्मरण-शक्ति कमजोर होती जाती है। युवावस्थामें मैं एक बार पुस्तक पढ़ लेता था, उसके संस्कार बीस वर्ष बाद भी वैसे ही रहते थे। अब नयी बातें सामने आनेपर उन्हें स्मरण रखनेकी चेष्टा करनेपर भी भूल हो जाती है।

आज एक बहुत विलक्षण, मूल्यवान् एवं सबके कामकी बात बतायी जाती है। महाराज युधिष्ठिरसे जब यक्षने कहा कि मैं तुम्हारे एक भाईको जीवित कर दूँगा, तब बार-बार प्रलोभन देनेपर भी युधिष्ठिर नकुलको ही जीवित करनेपर जोर देने लगे। उस समयके युधिष्ठिरके वचन स्वर्णमें मढ़ानेलायक हैं, लोग मुझे धर्मात्मा कहते हैं, यदि मैं नकुलको नहीं बचाकर अन्य किसीको जीवित करवाना चाहूँ तो उनपर कितना बुरा प्रभाव पड़ेगा।

यदि कोई आपपर पूरा विश्वास करता है कि वह चोरी नहीं करता, उसके साथ विश्वासघात मत करो। अगर उसको डाका ही डालना है तो दूसरी जगह डाल सकता है, पर जिसने उसपर विश्वास किया उसकी थैलीपर नजर न डाले, जिसने विश्वास किया उसके साथ विश्वासघात न करे। यह महापाप है। यह रुपयोंकी बात कही है। इसी प्रकार स्त्रीकी बात है, हम चाहे महान् कामी हों, यदि किसीने विश्वास करके अपनी स्त्री, बहन, बेटीको हमारे साथ भेज दिया तो उसे हमें अपनी बहन, बेटी ही समझना चाहिये, उसके विश्वासका कभी घात न करें।

यही बात महात्माकी है। जो उनको महात्मा मान लेते हैं उनके सामने महात्मा छिप नहीं सकते हैं, जो महात्मा नहीं हैं

उनको भी कोई महात्मा समझे तो उसके साथ तो वैसा ही बर्ताव करना चाहिये। अपनी पूजाके लिये महात्मा नहीं बनना है, लोग महात्मा कहते हैं, इसलिये उनकी दृष्टिमें नहीं गिरना चाहिये। उनकी आत्माको कितना धक्का पहुँच सकता है। युधिष्ठिरकी बात कि लोग मुझे धर्मात्मा समझते हैं।

मैं जिस जगह विश्वास करनेका पात्र न होऊँ और आपने मेरा विश्वास वास्तवमें कर लिया, उस जगह भी स्वाँग नहीं लजाना चाहिये, वैसा बननेकी चेष्टा करनी चाहिये, वास्तवमें धर्मात्मा, विश्वासपात्र बननेकी चेष्टा करनी चाहिये। सबके लिये न बन सके तो कम-से-कम उसके लिये तो बनना ही चाहिये।

एक स्त्री मुझे धर्मात्मा, महात्माकी दृष्टिसे देख रही है। मैं यदि पापी भी होऊँ, व्यभिचारी भी होऊँ तो भी मुझे उस पवित्र दृष्टिसे देखनेवाली स्त्रीके सामने तो धर्मात्मा ही रहना चाहिये। उसके साथ यदि मैं बुरी नीयतसे व्यवहार करूँगा तो मुझे कितनी भारी हानि होगी, यह मैं शब्दोंसे कैसे समझाऊँ। करना तो सभीके साथ अच्छा व्यवहार चाहिये, पर विश्वासघात तो बिलकुल ही नहीं करना चाहिये। यह पाखण्ड करनेवालेका ही दोष है।

हे परमेश्वर! तेरी मेरेपर बड़ी दया है, तू मुझे दम्भ, पाखण्डसे बचा। यद्यपि यह सकामभाव है, परन्तु कल्याणविषयक कामना है, अत: दोषी नहीं है।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम्॥

(गीता १६। ४)

हे पार्थ! दम्भ, घमण्ड और अभिमान तथा क्रोध, कठोरता

और अज्ञान भी—ये सब आसुरी-सम्पदाको लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण हैं।

आसुरीसे छुड़ाकर दैवी-सम्पदामें लगानेकी कामना पवित्र है, दोषी नहीं है। किसी साधकमें योग्यता नहीं है। भूलसे लोग उसे सिद्ध मान लेते हैं, माननेवालेको उसकी भावनाके बलसे सिद्धका ही फल प्राप्त हो जाता है। उदाहरण—शंकर स्वामीने माताको वचन दिया था, जिस समय तुम्हारे प्राण जायँ, तुम मुझे याद कर लेना मैं आ जाऊँगा। माताने समझ लिया यह महात्मा ही नहीं योगी भी है। माँने मरते समय याद किया, शंकर प्रकट हो गये। जैसे ये महादेवजी लोहिया हैं, हमलोग उनकी यह शक्ति नहीं मानते कि वे बम्बईमें हों और हमारे याद करते ही यहाँ आ जायँ। हम यदि उनकी यह शक्ति समझें तो हमारी दृढ़ भावनाके बलसे भगवान्‌को उनके रूपमें प्रकट होकर हमारी उस भावनाको सिद्ध करना पड़ेगा। यह बात श्रद्धापर निर्भर है, देखनेमें आयी है।

भगवान् सब जगह हैं, यह सत्य बात है। इसपर विश्वास करनेमें कोई बड़ी बात नहीं है। हम इतना और विश्वास करें कि हम जिस चित्रको, मूर्तिको पूज रहे हैं, भगवान् उसमेंसे साक्षात् प्रकट होंगे। हमारा यह विश्वास यदि पूरा हो तो उसीमेंसे भगवान् प्रकट हो जायेंगे। अनेक कथाएँ आती हैं। यमराजने मार्कण्डेयके गलेमें फाँसी डाली, उसने शिवलिंगको पकड़ लिया, उस मूर्तिसे साक्षात् शंकर प्रकट हो गये एवं सारे जगत्‌को दण्ड देनेवाले यमराजको भी दण्ड दिया। मूर्तिको ही तो पकड़ा था, पर विश्वासकी बात थी। युक्तियाँ भी हैं, पर श्रद्धा-विश्वास प्रधान है। एकलव्यने माटीके द्रोणसे जो विद्या प्राप्त की, स्वयं द्रोणसे

अर्जुनको उतनी नहीं मिली। ऐसी बातें उपनिषद्, वेद, पुराण सबमें आती हैं।

छान्दोग्य-उपनिषद्में जाबालाका पुत्र सत्यकाम गुरुके पास गया। गुरुने उसे गायें चरानेकी आज्ञा दी तथा कहा, जब चार सौकी एक हजार हो जायँ, तब आना। उसे उसीसे ज्ञान हो गया। गायें चराना सेवाका काम था, ज्ञान, बुद्धिका कार्य नहीं था, पर श्रद्धासे हो गया। भगवान् कहते हैं—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता ४। ३९)

जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान् मनुष्य ज्ञानको प्राप्त होता है तथा ज्ञानको प्राप्त होकर वह बिना विलम्बके—तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है।

जितनी श्रद्धा होती है उतनी तत्परता हो जाती है। भगवान् नहीं मिल रहे हैं, विलम्ब हो रहा है, यह हमारी श्रद्धाकी ही कमी है।

'नासतो विद्यते भावः'—जो सत् वस्तु होती है उसका कभी अभाव नहीं होता। असत्का कभी भाव नहीं होता। सत् वस्तु क्या है? सत् साक्षात् परमात्माका स्वरूप है।

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥

(गीता १७। २३)

ॐ, तत्, सत्—ऐसे यह तीन प्रकारका सच्चिदानन्दघन ब्रह्मका नाम कहा है; उसीसे सृष्टिके आदिकालमें ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञादि रचे गये।

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते॥

(गीता १७। २६)

'सत्'—इस प्रकार यह परमात्माका नाम सत्यभावमें और श्रेष्ठभावमें प्रयोग किया जाता है तथा हे पार्थ! उत्तम कर्ममें भी 'सत्' शब्दका प्रयोग किया जाता है।

उत्तम कर्ममें सदाचार, उत्तम आचरणमें उत्तम भाव, भगवान्का नाम यह सब सत् है। उत्तम आचरण—वाणीसे सत् व्यवहार।

हृदयमें परमात्माकी, सत्की शरण लेनी चाहिये, भूलकर भी असत्की शरण नहीं लेनी चाहिये। नीतिमें कहा है—

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवं परिसेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव हि॥

जो सत्को छोड़कर मिथ्याका आश्रय लेते हैं, उनके सत् नष्ट हो जाते हैं, असत् तो नष्ट हैं ही। सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, वायु सब सत्के आधारपर हैं। उपनिषदोंमें सत्की बड़ी महिमा गायी गयी है।

एक ऋषिकुमार वनमें साधन करता था, कोई उसे महात्मा समझकर उसके पास गया एवं उससे सोलह कलावाले परमात्माको प्राप्त करनेकी बात पूछी। उस कुमारने स्पष्ट सत्य कह दिया कि मैंने अभी उसे पाया नहीं, आप प्राप्त पुरुषकी खोज करिये।

हमलोगोंको सत् ही बोलना चाहिये, सत्का ही आश्रय लेना चाहिये। मेरे परिचित एक सज्जन पावनेदार लोगोंके सामने जैसे नल-दमयन्ती एक वस्त्र लेकर घरसे चले गये थे, उसी प्रकार घरसे चले गये। उनका भाव था कि हमारा सब कुछ देनेपर भी

लोगोंका जो कुछ बच जाय, हे भगवन्! वह एक-एक पाई हमसे दिया जाय। यदि यह भाव हो, बेईमानी न करे तो मेरा यह विश्वास है कि भगवान् उसका ऋण चुकता करवा देंगे। उसके रोजगार होकर उसका बाकीका ऋण चुक जायगा। भगवान्‌की जिम्मेदारी है। ऐसा व्यवहार होना चाहिये। इसको जितना महत्त्व दिया जाय, उतना ही थोड़ा है। बहुत दिन नहीं लगेंगे, शीघ्र ही हो जायगा। इससे भी ऊँचा भाव पकड़े तो मात्र ऋण ही न उतरे, अपितु साक्षात् भगवान् भी मिल जायँ। ऊँचा भाव यह है कि सब कुछ देनेपर जो कुछ बाकी रहे उसे हरिश्चन्द्रकी तरह अपने स्त्री, बालकोंको बेचकर दे दे। हरिश्चन्द्रकी तरह भगवान् उसे मिल जायेंगे। बच्चेके लिये कफन नहीं है, स्त्री उसे जलाने आयी है, हरिश्चन्द्र कहते हैं—मैं चाण्डालका सेवक हूँ, स्वामीका कर लिये बिना जलाने नहीं दे सकता। स्त्री कहती है—मैं आपके धर्ममें बाधक नहीं होना चाहती, मैं कहाँसे दूँ, आप मुझे मार्ग दिखा दें। हरिश्चन्द्रने कहा—तुम ओढ़नेका आधा वस्त्र लज्जा-निवारणके लिये रख लो, आधा करमें दे दो। उसे बेचकर उसका पैसा स्वामीके कोषमें जमा होगा। हरिश्चन्द्र चीर काटना चाहते हैं, भगवान् प्रकट हो गये। मनुष्य जन्म-जन्मान्तरके ऋणसे मुक्त हो सकता है, हमारी इच्छा होनी चाहिये। व्यवहार सत्य होना चाहिये।

जिस धनको हम अमृतके समान समझकर भोग रहे थे, दूसरेके रुपयोंको हम खाने, पीने, भोग, आराममें लगा रहे थे, हम उसका यह दण्ड प्राप्त कर रहे हैं। उसे हम चुकता कर दें। स्त्री-बाल-बच्चे सबसे चुका दें। यह प्रशस्त कर्म है कि सब कुछ पावनेदारोंके लिये अर्पण करना। अच्छी नीयत, पावनेदारोंका चुका देना—यह सद्भाव है।

नित्य अठारह अध्याय गीता पढ़नेवालेसे एक अध्याय अर्थ समझकर पाठ करनेवाला श्रेष्ठ है। एक श्लोक भी आचरणमें लानेवालेको भगवान् दर्शन दिये बिना नहीं रह सकते। जैसे कोई घरमें पड़े पारसको जान लेता है, परमात्माकी प्राप्ति भी ऐसी ही बात है। हम सबको हो रही है। अज्ञताका विनाश करना है, सत्‌का विनाश नहीं होता।

'साधु भाव' श्रेष्ठ भाव अच्छी नीयतका नाम है। खोटी नीयत असद्भाव है। उत्तम आचरण प्रशस्त कर्म है।

सत्कर्मसे, सद्भावसे, सत् आचरणसे भगवान् मिलते हैं, फिर सत्‌से भगवान् मिलें इसमें तो कहना ही क्या है? हमारे कितने जन्म हो गये कोई नहीं जानता। करोड़ों ब्रह्मा हो गये, किन्तु हमें मुक्ति नहीं मिली। गीतापर विश्वास करें तो वह भगवत्प्राप्ति इसी जन्ममें हो सकती है।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

(गीता २। ४०)

इस कर्मयोगमें आरम्भका अर्थात् बीजका नाश नहीं है और उलटा फलरूप दोष भी नहीं है, बल्कि इस कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा-सा भी साधन जन्म-मृत्युरूप महान् भयसे रक्षा कर लेता है।

इसके आरम्भका नाश नहीं होता। वैद्यकी फीस दी, काम खत्म। बिना पैसे दिये लिये हुए कामसे हम मुक्त नहीं हो सकते। जो निष्कामभावसे भगवान्‌की सेवा करते हैं, भगवान् उससे मुक्त नहीं हो सकते। रामायणमें भगवान्‌ने हनुमान्‌से कहा है कि मैं तुम्हारे ऋणसे मुक्त नहीं हो सकता।

निष्कामकर्म सत् है। कर्मफल देनेसे ही शान्त होता है। निष्कामका फल नहीं लेते। अतः वह नित्य है, सत्य है।

प्रत्यवाय नहीं है—देवीकी सकाम उपासना की, लालकी जगह सफेद फूल चढ़ाये, चरणोंकी जगह माथेपर फूल चढ़ाये, उलटा फल हो सकता है। निष्कामभावमें यह उलटा फल नहीं होता। निष्काम सेवा की, लालटेन फूट गयी, पश्चात्ताप करने लगा, उसे हम समझाते हैं। नौकरसे फूटी तो पैसे काटते हैं, क्योंकि वह पैसा लेता है। पैसोंसे पैसे कटते हैं। हम पैसे नहीं लेते किससे काटे। **'मृत्युसागरात्'** मृत्यु सागरकी तरह है। समुद्रके कणोंकी चाहे गणना हो जाय, पर यदि भगवान् न मिलें तो मृत्युकी गणना नहीं हो सकती। निष्काम कर्मयोगका थोड़ा भी पालन उद्धार कर देता है—

योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता ५। ६)

भगवत्स्वरूपको मनन करनेवाला कर्मयोगी परब्रह्म परमात्माको शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है।

निष्काम कर्मयोगका थोड़ा भी पालन अन्तकालमें तो उसी समय कल्याण कर देता है। समय हो तो थोड़ा समय भी लग सकता है।

भगवान्ने यह मनुष्यशरीर दिया, सारी पृथ्वीपर कुछ अरब जीव ही इस समय मनुष्य हैं। जीव असंख्यकोटि हैं।

मनुष्यके नाते मुक्तिका हमें जन्मसिद्ध अधिकार है। परमात्माके राज्यका मालिक होनेका जन्मसिद्ध अधिकार है। यदि वह नहीं सुधरता है तो अपराधीको सरकार बाध्य होकर कैदमें डालती है। लज्जाकी बात है, मुक्तिका पात्र है, भगवान् सोचते हैं कि मैंने

उसको मुक्तिका पात्र बनाया था। अन्तकालमें भी भगवान्‌का स्मरण कर ले तो उसे मुक्त कर देते हैं। कानून ही बना दिया।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

(गीता ८।६)

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको स्मरण करता हुआ शरीरका त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है; क्योंकि वह सदा उसी भावसे भावित रहा है। चाहे जिसका चिन्तन करे उसीको प्राप्त हो जाता है। यह भक्तिका प्रसंग है। कर्मयोगकी बात इस प्रकार है—

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥
एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥

(गीता २। ७१-७२)

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर ममतारहित, अहंकाररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है अर्थात् वह शान्तिको प्राप्त है।

हे अर्जुन! यह ब्रह्मको प्राप्त पुरुषकी स्थिति है, इसको प्राप्त होकर योगी कभी मोहित नहीं होता और अन्तकालमें भी इस ब्राह्मी स्थितिमें स्थित होकर ब्रह्मानन्दको प्राप्त हो जाता है।

यह निष्काम कर्मयोग है। कामनाका त्याग, परवाहका त्याग, मैं त्यागी हूँ—इस भावका भी त्याग, ममता-अहंकारका त्याग होना चाहिये। यह योग सत् है। सत्‌की प्राप्तिमें हेतु है। इसका विनाश नहीं होता। भगवान् कहते हैं—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥

(गीता ४। १)

मैंने इस अविनाशी योगको सूर्यसे कहा था, सूर्यने अपने पुत्र वैवस्वत मनुसे कहा और मनुने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकुसे कहा। परम्परा नष्ट हुई। योग तो अव्यय है। योग क्या है? ईश्वरका कानून है। शक्तिमान्में शक्ति मौजूद है ही। ईश्वरका कानून है तो ईश्वर है ही।

महाप्रलयमें यह योग नारायणमें जाकर निवास करता है, फिर विस्तार हो जाता है, नष्ट नहीं होता। यह सत् है इसलिये इसका कभी विनाश नहीं होता। हमारे हृदयका भाव सत्, वाणी सत्, क्रिया सत्, उपास्यदेव सत् सब सत्य होना चाहिये। हमलोगोंके हाथमें थोड़ा समय है, यह भी हाथसे चला जायगा। तुलसीदासजी कहते हैं—

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥

कबीरदासजी कहते हैं—

कबिरा नौबत आपनी दिन दस लेहु बजाइ।
यह पुर पट्टन यह गली बहुरि न देखहु आइ॥

सब शास्त्र, वेद, उपनिषद् कह रहे हैं। कठोपनिषद्में यमराज कहते हैं—

इह चेदशकद् बोद्धुं प्राक् शरीरस्य विस्रसः।
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते॥

(कठ० २। ३। ४)

शरीर पात होनेके पहले ही यदि परमात्माको नहीं जाना तो पुनः जन्म लेना निश्चित है।

राजा भोजने मुंजके प्रति यह सन्देश दिया था—

मान्धाता च महीपतिः कृतयुगालंकारभूतो गतः
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशस्यान्तकः।
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो याता दिवं भूपते
नैकेनापि समं गता वसुमती मुंज त्वया यास्यति॥

(भोजप्रबन्ध ३८)

सतयुगके अलंकारस्वरूप महाराज मान्धाता भी पृथ्वी छोड़कर चले गये, जिन्होंने महासागरपर सेतु बँधाया, वह दशान्तक राम भी कहाँ हैं, अन्य युधिष्ठिर आदि राजा भी दिवंगत हो गये। किसीके साथ भी पृथ्वी नहीं गयी, हे चाचा मुंज! लगता है कि यह आपके साथ जायगी।

सब शास्त्र, पुराण, वेद, महात्मा, गीता, रामायण कहते हैं—यही सबसे बढ़कर है। जितना समय बच गया है हमलोगोंमें जो पापी-से-पापी पुरुष हैं, उनका भी थोड़े-से-थोड़े समयमें उद्धार हो सकता है। मनमें यह भावना करना कि मैं पापी हूँ, इसलिये मेरा उद्धार नहीं हो सकता, यह तो पतितपावन, दयासागरपर अविश्वास करना है। बस, धर्मका पालन करना है। भारी-से-भारी आपत्ति आनेपर भी धर्मसे न हटे। भगवान् विपत्ति देकर धीर-वीर एवं योग्य बना रहे हैं। यह ताड़ना माँकी ताड़नासे भी बढ़कर है, हमारे हितके लिये है। हम अनुत्तीर्ण हो जायँगे तो मारे जायँगे। उत्तीर्ण हो गये तो हरिश्चन्द्रकी तरह भगवान् मिल जायँगे।

भगवान् परीक्षा लेते हैं। शिष्यकी परीक्षा गुरु लेते हैं। उसे उत्साह देनेके लिये, योग्य बनानेके लिये लेते हैं, उठानेके लिये परीक्षा लेते हैं। भगवान् सबकी परीक्षा लेते हैं। साक्षात् सीताकी

परीक्षा ली, बड़ा भयंकर रूप धारण किया। भगवान्ने सीताको आगमें तपाकर पवित्र किया। सुनार सोनेको तपाकर उसका मैल जलाकर शुद्ध कर देते हैं। भगवान् भी अग्निपरीक्षा ले रहे हैं। जिसकी परीक्षा लें उसपर विशेष दया है, क्योंकि उसका शीघ्र ही हित होनेवाला है। हमें आगमें कूद पड़ना चाहिये। हम थोड़े तापसे घबड़ा जाते हैं। प्रह्लादको याद करो। हमें क्या भय है? **'नासतो विद्यते भावः'।**

भगवान् श्रीरामका अवतार धर्मकी स्थापना, धर्मके प्रचारके लिये हुआ। भगवान्ने दिखला दिया कि ऐसे आचरण करना चाहिये। इस प्रकारका भाव ही सद्भाव है। ऐसा आचरण ही सदाचार है।

भगवान् माता कैकेयीसे पूछते हैं। पिताजीको इतना दुःख क्यों हो रहा है? कैकेयी बता देती है कि मैंने यह वरदान माँगा है। भगवान् कहते हैं इतनी छोटी बात। वनमें ऋषि-दर्शन, पिताजीकी आज्ञा, जननी तुम्हारी सम्मति, प्रेम प्यारे भरतको राज्य, अहा! कैसा उत्तम भाव है। धर्म नित्य है, ईश्वर नित्य है, धन-शरीर नाशवान् है। अनित्य वस्तुके लिये नित्य वस्तुका त्याग नहीं करना चाहिये। लाख रुपयेकी थैली यहीं पड़ी रहेगी। आप इसके लिये पाप क्यों करते हैं।

भगवान् कहते हैं—मेरे प्रेमप्यारे भाई भरतको राज्य मिलेगा कितने आनन्दकी बात है? कैसा उत्तम भाव है? यह क्यों? भरतके हृदयमें यह भाव था। जब लौटकर आये। माँसे पूछा—पिताजी कहाँ हैं? जब उनके मरनेकी बात सुनी, रोने लगे। हा! पिताजीने मुझे रामको नहीं सौंपा। जब रामके वन जानेकी बात सुनी, तब कितना विलाप करने लगे महर्षि वाल्मीकिने लिखा

है भरतने माताको तलवार दिखाकर कहा—मैं तुझे मार डालता, पर राम मुझे मातृहत्यारा जानकर त्याग देंगे इसी भयसे, रामके भयसे तेरे प्राण बचते हैं। भरतका कैसा भाव है।

सत्कर्मकी बात—रामके वनगमनसे दुःखी होकर दशरथने कैकेयी एवं भरतको शाप दिया—ये मेरे शवको न छूएँ। इनके पिण्ड मुझे प्राप्त न हों। जब रावणके मरनेके बाद दशरथजी आये, भगवान्‌से वर देनेकी बात कही तो रामने यही माँगा कि आपने भाई भरतको, माता कैकेयीको उस समय जो शाप दिया था, उससे मुक्त कर दें। कैसी अद्भुत क्रिया है? माता कैकेयीके कल्याणकी बात—यह सत्कर्म है।

ध्रुवने माँगा—जिस माताने ताना मारा, उसका कल्याण हो। प्रह्लादने माँगा—भगवान्‌की भक्तिमें बाधा डालनेवाले मेरे पिताका कल्याण हो। हमारी बुराई करनेवालेके साथ भलाई यह महान् सत्कर्म है। इसका थोड़ा भी पालन महान् भयसे उद्धार कर देता है, करके भी अहंकार न करे।

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(गीता २। ७१)

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर ममतारहित, अहंकाररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है अर्थात् वह शान्तिको प्राप्त है।

भगवान्‌पर भरोसा करके कठिन-से-कठिन काम आरम्भ करनेपर भी बाध्य होकर भगवान्‌को उसे पूरा करना पड़ता है। अर्जुनने बिना विचारे प्रतिज्ञा की कि कल शामतक जयद्रथको यदि न मारूँ तो मैं प्राण त्याग दूँगा। भगवान्‌ने कहा—अर्जुन!

जयद्रथको एक दिनमें कैसे मार सकते हो? द्रोण, कर्णादि इतने महारथी हैं, सारी शक्ति लगेगी।

अर्जुनने कहा—आपके भरोसेपर। भगवान्को बाध्य होकर व्यवस्था करनी पड़ी। भगवान्की शक्ति असम्भवको भी सम्भव करनेवाली है। भगवान्का भरोसा और विश्वास करना चाहिये। भगवान् सब जगह उपस्थित हैं। यह विश्वास करके पुकारे—हे नाथ! हे हरि! बस उसी समय भगवान् प्रकट होकर उत्तर देंगे। यदि आपके मनमें यह नास्तिकता है कि भगवान् नहीं आयेंगे तो नहीं आयेंगे। हमलोग यह विश्वास करें कि आज रात हमारे परम प्यारे हरि आयेंगे, आप तैयारी करिये, जैसे गाड़ीसे उतरकर हमारा मित्र ठीक समयपर आता है, उसी प्रकार भगवान् आपसे अवश्य मिलेंगे।

दुर्वासासे दुर्योधनने वर माँगकर उनको पाण्डवोंके पास वनमें भेजा। पाण्डवोंने आदित्यहृदयस्तोत्रके द्वारा उपासना करके भगवान् सूर्यसे एक पात्र प्राप्त किया था। द्रौपदीके भोजन करनेके बाद उसमें कुछ नहीं रहता था। सबको भोजन कराकर गृहिणीको भोजन करना चाहिये। द्रौपदीने सत्यभामाको यह बात विस्तारसे कही थी।

दुर्वासा गये, युधिष्ठिरने निमन्त्रण दे दिया। द्रौपदीका विश्वास था उसने पुकारा, भगवान् एक क्षणमें उपस्थित हो गये। पुकारते ही हाजिर। हमलोगोंमें भी ऐसा विश्वास हो तो पुकारते ही हाजिर हो जायँगे। भगवान्ने पूछा—द्रौपदीने सब बात बतलायी। भगवान्ने कहा—भूख लगी है, द्रौपदीको बड़ा दुःख हुआ। भगवान् भोजन माँगते हैं। घरमें कुछ नहीं है। भगवान्ने कहा—

कृष्णे न नर्मकालोऽयं क्षुच्छ्रमेणातुरे मयि।
शीघ्रं गच्छ मम स्थालीमानीय त्वं प्रदर्शय॥

कृष्णे! मैं तो भूख और थकावटसे आतुर हो रहा हूँ और तुझे हँसी सूझती है, यह विनोदका समय नहीं है तुरन्त पात्र लाकर मुझे दिखाओ। एक पत्ता मिला। भगवान्‌ने उसे खाया एवं कहा—

विश्वात्मा प्रीयतां देवस्तुष्टश्चास्त्विति यज्ञभुक्।

इस सागसे सम्पूर्ण विश्वके आत्मा सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरि तृप्त और संतुष्ट हों।

फिर भगवान्‌ने कहा—सबको बुलाओ, जाकर कहो—भोजन तैयार है। भोजन नहीं है पर भगवान्‌पर कितनी श्रद्धा है। प्रत्यक्षसे बढ़कर विश्वास है। भोजन नहीं दीखता है, किन्तु भगवान् कहते हैं—जाओ बुला लाओ। सहदेव बुलाने जाते हैं। दुर्वासाजी एवं उनके शिष्योंका पेट इतना भर गया कि झुकना मुश्किल हो गया। अम्बरीषकी याद आ गयी। युधिष्ठिर भगवान्‌के श्रेष्ठ भक्त हैं, अतः घबराकर भाग लिये।

भगवान् सबके लिये हैं, तैयार हैं, विश्वास होना चाहिये। आश्रय ले लें, भगवान् दूर नहीं हैं, पासमें खड़े हैं। हम पुकारते कहाँ हैं, पुकारते तो हैं पर हृदयमें विश्वास नहीं है। आज मैं आपसे पूछता हूँ कितनी रसोई है? दस आदमीकी, मेरे साथ पचास आदमी हैं, यदि मैं कहूँ—बुला लो तो सबको विश्वास होगा? यहाँ तो दसकी है, वहाँ तो कुछ नहीं था। विश्वासकी बात है। जिसको भगवान्‌का भरोसा है कोई उसका अपमान नहीं कर सकता। कोई करता है तो वह घटना उस भक्तको उज्ज्वल बनानेवाली होती है। द्रौपदीके चीरहरणके समय दस हजार हाथियोंके बलवाला दुःशासन थक गया, किन्तु दस गज चीर नहीं घटा। भगवान्‌ने यह बात प्रत्यक्ष दिखला दी।

गान्धारीका कितना तेज है। माँके पास दुर्योधन जाकर

आशीर्वाद माँगता है। माँ कहती है—'**यतो धर्मस्ततो जयः**'। गान्धारीकी कितनी शक्ति है। दुर्योधन हार जानेपर माँके पास जाकर कहता है—माँ बचाओ। माँ कहती है—युधिष्ठिरके पास जाओ, कह देना माँने भेजा है। तुम्हारेपर विश्वास करके भेजा है, मेरे प्राणोंकी रक्षाका उपाय बताओ। युधिष्ठिरने बता दिया नग्न होकर माँके समक्ष खड़े हो जाओ। माँ आँख खोलकर देख लेगी तो तुम्हें संसारमें कोई नहीं मार सकेगा। रास्तेमें भगवान्‌ने कहा कि तुम्हारी इच्छा हो तो पुष्पोंका लंगोट लगा लो। गान्धारी जबसे ससुराल आयी थीं तभीसे अपनी आँखोंके पट्टी बाँध ली थीं। मेरे पतिको नेत्रोंका सुख नहीं है, अतः मैं भी वह सुख नहीं चाहती। वही पट्टी आज खोली। पुष्पोंसे ढका हुआ अंग वज्रका नहीं हुआ। महाभारतके बाद युधिष्ठिर आदिके साथ भगवान् गान्धारीके पास गये। गान्धारीने भगवान् श्रीकृष्णको शाप दे दिया। भगवान् प्रसन्न हो गये। अच्छा हुआ। भगवान्‌ने रामावतारमें सबको सरयूकी धारसे वैकुण्ठ पहुँचाया था। कृष्णावतारमें आरेकी धारसे पार किया। गान्धारीने युधिष्ठिरके नाखून देखे, नाखून जल गये। दिखला दिया कि यदि मैं तुम्हारी तरफ देखूँ तो तुम्हारी भी यही दशा होगी। युधिष्ठिर—जैसे धर्मात्माकी यह दशा हुई। हम धर्मका त्याग न करें तो हमें कौन मार सकता है? द्रौपदी आदि सब गिर गये। युधिष्ठिरको कोई न मार सका। उन्होंने कभी अधर्म नहीं किया, बिना अधर्म किये कोई नहीं मार सकता। धर्मका आश्रय लो, ईश्वरका आश्रय लो। ईश्वरके लिये, धर्मके लिये—प्राण न्योछावर करनेवालेके लिये भगवान् उसी समय तैयार हैं। अग्निमें भी कूदना पड़े तो हर्षके साथ कूद पड़े, परिणाम मंगल ही होगा।

निरन्तर भगवान्‌को याद रखें

भगवान् कहते हैं जो मेरी भक्ति करता है, मैं उसका बोझ ढोता हूँ। केवल इतनी शर्त है निरन्तर भगवान्‌को याद रखना, ध्यान करना।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९। २२)

जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(गीता १८। ४६)

जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धिको प्राप्त हो जाता है।

आधे श्लोकसे भगवान्‌ने अपनी व्यापकता एवं आधेमें संसारकी सेवा करना ही मेरी सेवा है—यह बताया। साकार भगवान्‌की पूजाके लिये भगवान्‌ने कहा है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता ९। २६)

जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया

प्रवचन—दिनांक १०-८-१९३९, गोरखपुर।

हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ।

केवल भगवान्‌की पूजासे भगवान् मिल जाते हैं, यदि आप और भी अधिक विश्वास करें तो पूजाका एक अंश धारण करनेसे भगवान् मिल जाते हैं। पूजा षोडश प्रकारकी है, उसमेंसे कोई एक प्रकारकी पूजा भी प्रेमसे की जाय तो भगवान् प्रकट हो जायँ।

पत्रं—पत्तेसे भगवान् प्रकट हो जाते हैं। क्या पहले कभी प्रकट हुए हैं? हाँ, द्रौपदी और दुर्वासा ऋषिकी कथा, अम्बरीष एवं दुर्वासाकी कथा देखनी चाहिये।

पाण्डव कैसे विश्वासी हैं। भगवान् कहते हैं—दस हजार शिष्योंके साथ दुर्वासाजीको बुला लाओ। भोजनकी कोई व्यवस्था नहीं है तब भी उनको कोई चिन्ता नहीं है। वे जानते हैं कि भगवान् आ गये हैं फिर चिन्ता किस बातकी?

पुष्प—यदि कोई पुष्प अर्पण कर दे तो भगवान् मिल जाते हैं। गजेन्द्रने एक पुष्प चढ़ाया, भगवान् प्रकट हो गये।

फल—भगवान् शबरी भीलनीके यहाँ फलके लिये गये एवं फल खाये। शबरीको विश्वास था कि भगवान् आयेंगे। भगवान्‌ने उसकी बहुत महिमा गायी है। भगवान् प्रेम देखकर प्रसन्न हो जाते हैं।

जल—रन्तिदेवके द्वारा जल अर्पण करनेसे भगवान् प्रसन्न हो गये। यह सिद्ध हो गया है कि एक-एक बातसे भगवान् मिल जाते हैं।

ज्ञानी महात्माको प्रणाम करनेसे भगवान् मिल जाते हैं, फिर भगवान्‌को प्रणाम करनेसे भगवान् मिल जायँ, इसमें तो कहना ही क्या है? भीष्मपितामहने कहा है—

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय॥

(महा० शान्तिपर्व ४७। ९२)

भगवान् श्रीकृष्णको एक बार भी प्रणाम किया जाय तो वह दस

अश्वमेध यज्ञोंके अन्तमें किये गये अवभृथ स्नानके समान फल देनेवाला होता है। इसके सिवाय प्रणाममें एक विशेषता है, दस अश्वमेध करनेवाला तो पुनः इस संसारमें जन्म लेता है; किन्तु श्रीकृष्णको प्रणाम करनेवाला मनुष्य फिर भवबन्धनमें नहीं पड़ता।

क्या एक बार प्रणाम करनेसे भगवान् मिल जाते हैं? हम तो हजारों बार प्रणाम करते हैं फिर भगवान् क्यों नहीं मिलते? हम विश्वास नहीं करते हैं। ऐसा विश्वास हो जाय कि एक बार प्रणाम करनेसे भगवान् मिल जाते हैं तो मिल जायेंगे। जब तुम प्रणाम करते हो तो ऐसा विश्वास क्यों नहीं कर लेते कि हम मरकर वापस नहीं आयेंगे। अश्रद्धा करके अपनी हानि करना है। क्या आप मरकर वापस आ गये? भविष्यमें आप भगवान्‌को प्राप्त कर सकते हैं। भगवान् कहते हैं कि मुझे प्रणाम करनेवाला संसारमें लौटकर वापस नहीं आता। यह तो भगवान्‌को प्रणाम करनेकी बात है, भक्ति करनेसे भी भगवान् मिल जाते हैं।

सुहागन स्त्रीके द्वारा पातिव्रत धर्मका पालन करनेसे तथा संसारके पदार्थोंसे मनमें वैराग्य रखनेसे भगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं। गहने, कपड़े, बालकोंमें प्रीति मूर्खता है। ईश्वरको छोड़कर घृणित पदार्थोंमें प्रीति करना कितनी भूल है। संसारके सुख-पदार्थ क्षणभंगुर हैं। सुखका तो अंशमात्र भी नहीं है, भ्रमसे मालूम होता है। जैसे स्वप्नमें राज्य मिल जाता है तो प्रसन्नता होती है। वैसे ही संसारका सुख स्वप्नवत् है। इसमें तो दुःख-ही-दुःख भरा है। दुःखमें सुख मान लिया। धन-उपार्जन करनेमें कष्ट, खर्च करनेमें कष्ट, रक्षा करनेमें कष्ट है।

अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये।
नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम्॥

(श्रीमद्भागवत ११। २३। १७)

धन कमानेमें, कमा लेनेपर उसको बढ़ाने, रखने एवं खर्च करनेमें तथा उसके नाश और उपभोगमें जहाँ देखो वहीं निरन्तर परिश्रम, भय, चिन्ता और भ्रमका ही सामना करना पड़ता है।

शरीरमें सुख कहाँ है? एक-दो बीमारी हरेक व्यक्तिको होती है। यदि आप निरोगी हैं तो आपको दुःख नहीं है। सुख क्या मिलता है? कहीं दुःखको सुख मान लिया, कहीं दुःखके अभावको सुख मान लिया। बच्चेको पालन करनेमें दुःख है, रात-दिन टट्टी-पेशाब करता है, उसमें क्या सुख है? जो स्त्री ज्यादा कीमती वस्त्र बनवाती है, वह पाप करती है। बहुत-सी गरीब स्त्रियोंके पास एक साड़ी है, तुम पचास साड़ी पास रखती हो, जो कि पचास स्त्रियाँ पहन सकती हैं। जो अधिक चीज है, वह अनाथों-गरीबोंको बाँट दे। श्रीमद्भागवतमें कहा है—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

(श्रीमद्भागवत ७। १४। ८)

मनुष्योंका अधिकार केवल उतने ही धनपर है, जितनेसे उनकी भूख मिट जाय। इससे अधिक सम्पत्तिको जो अपनी मानता है, वह चोर है, उसे दण्ड मिलना चाहिये।

आजकल हमारे घरकी स्त्रियाँ चाँदीकी कढ़ाई करवाकर चमकदार ओढ़ना ओढ़ लेती हैं जो काँटेकी भाँति चुभता है, पर उसमें सुख मान लेती हैं, हाथोंमें गहना पहनकर सुख मानती हैं। यह तो हथकड़ी-बेड़ी है। अगर उसमें सुख हो तो रात-दिन पहने रहो। सबसे मन हटाकर भगवान्‌में लगाना चाहिये। सुख तो भगवान्‌में है। संसारके भोगोंमें जो सुख प्रतीत होता है, वह प्रतिबिम्बमात्र है। संसारसे वैराग्य और भगवान्‌में प्रेम करना चाहिये।

ईश्वरके भजनमें ही समयकी सदुपयोगिता

एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है, खूब ध्यान देकर सुनें। संसारमें जितनी चीजें दीखती हैं, उनमें यह प्रतीत होता है कि सबसे श्रेष्ठ मनुष्य हैं। ईश्वरने हमें मनुष्य बनाया है, उत्तम कुल, उत्तम देशमें उत्पन्न किया है। सारे धर्म सनातन धर्मके बाद बने हैं, अन्य सब धर्म कल्पित हैं, वैदिक धर्म अनादि है। सारी बातें हमें प्राप्त हैं। फिर भी हम मूर्खता की हद करते हैं, जैसे मदिरासे चेत नहीं रहता, वैसे ही हम मोह-मायारूपी मदिरा पीकर उन्मत्त हो रहे हैं। कबीरजी कहते हैं—

कबिरा नौबत आपनी दिन दस लेहु बजाइ।
यह पुर पट्टन यह गली बहुरि न देखहु आइ॥

हमलोगोंको यह विचार करना चाहिये कि मनुष्यजीवनका समय अमूल्य है। खाना, पहनना, भोग, आलस्य, प्रमाद, शरीरके पालन-पोषणमें समय बिताना गलेमें छूरी मारना है। तुलसीदासजी कहते हैं—

नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

आप अपने समयको शरीरके लिये बिता रहे हैं। यह शरीर आपके क्या काम आयेगा? दस सेर मांस बढ़ा लोगे तो क्या होगा। कम होगा तो क्या होगा? शरीरसे तुम्हारा वियोग होगा ही। मनुष्य धर्मका पालन नहीं करे तो पशुके समान ही है।

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥

प्रवचन—दिनांक ११-८-१९३९, गोरखपुर।

जिनमें विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील, गुण एवं धर्म नहीं है वे मनुष्यशरीरमें धरतीपर भाररूप हैं, मनुष्यके रूपमें पशु ही हैं।

धन साथ नहीं जाता। दादा-परदादा मर गये, साथमें एक पाई भी नहीं ले गये। जब ऐसी बात है, तब समयको उत्तम-से-उत्तम काममें बिताना चाहिये। समयका चौथाई भाग भगवान्‌के अर्पण कर दें तो समय नित्य और अमर हो जाता है। मूल्यवान् समयको धूलमें क्यों मिलाते हो? भगवान् घोषणा करते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

सम्पूर्ण धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार परमेश्वरकी ही शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।

आपलोगोंको ईश्वरने बुद्धि और ज्ञान दिया है। विषय-भोगोंसे प्रेम हटाकर भगवान्‌में लगाना है। संसारके भोग तो नाश होनेवाले हैं, उनके साथ यह शरीर भी नष्ट हो जाता है। किसी भक्तने कहा है—

आये थे कुछ लाभ को खोय चले सब मूल।
फिर जाओगे सेठ पा पले पड़ेगी धूल॥

जो मनुष्य-जन्म पाकर भगवान्‌को प्राप्त नहीं करता है, वह मूर्ख है। सारे संसारसे प्रेमको हटाकर प्रभुके चरणोंमें प्रेम करना चाहिये। भगवान् तो आपको चाहते हैं, भगवान्‌की प्रतिज्ञा है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

(गीता ४। ११)

हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ।

बुद्धिको पवित्र बना लोगे तो इस जन्ममें भगवान् मिल जायँगे, अन्यथा मरते समय तो मिल ही जायँगे या जड़भरतकी तरह एक जन्म हो सकता है। हमलोगोंका अमूल्य जीवन धूलमें मिल रहा है। यदि हम प्रभुके गुण और प्रभावको जानते तो उन्हें कभी नहीं भूलते। जब भगवान् हमसे प्रेम करना चाहते हैं तो करोड़ कामको छोड़कर भगवान्‌का भजन करना चाहिये। भगवान्‌से प्रेम करना चाहिये। भगवान् कहते हैं—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।

(गीता ८।७)

इसलिये हे अर्जुन! तू सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर।

भगवान्‌के साथ मित्रता हो गयी तो फिर क्या कहना है। आप तो ऐसे बन सकते हैं कि आपके दर्शन-स्पर्श करनेवाले पवित्र हो जायँ। तुलसीदासजी कहते हैं—

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥

× × ×

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपारसंवित्सुखसागरेऽस्मिँल्लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः॥

जिसका चित्त नित्य-निरन्तर परब्रह्म परमात्मामें लगा हुआ है जो उस अथाह ज्ञान एवं आनन्दसागरमें ही मग्न रहता है, ऐसे भगवद्भक्तका कुल पवित्र हो जाता है, उसको जन्म देनेवाली माता धन्य हो जाती है तथा यह पृथ्वी भाग्यशालिनी हो जाती है।

हमको ध्रुवकी तरफ ध्यान देकर ईश्वरमें विश्वास करके ईश्वरके भजनमें समय लगाना चाहिये। यही सबसे बढ़कर बात है।

मनुष्यका कर्तव्य, धारण करने एवं त्यागनेयोग्य बातें

प्रश्न—मनुष्यका कर्तव्य बतलाइये?

उत्तर—गीतामें तीन जगह चार-चार श्लोक हैं उनको देख लें। अध्याय नौमें श्लोक ११-१२ त्यागनेके एवं १३-१४ धारणके लिये हैं—

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥
मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥

(गीता ९। ११-१२)

मेरे परमभावको न जाननेवाले मूढ लोग मनुष्यका शरीर धारण करनेवाले मुझ सम्पूर्ण भूतोंके महान् ईश्वरको तुच्छ समझते हैं अर्थात् अपनी योगमायासे संसारके उद्धारके लिये मनुष्यरूपमें विचरते हुए मुझ परमेश्वरको साधारण मनुष्य मानते हैं।

वे व्यर्थ आशा, व्यर्थ कर्म और व्यर्थ ज्ञानवाले विक्षिप्तचित्त अज्ञानीजन राक्षसी, आसुरी और मोहिनी प्रकृतिको ही धारण किये रहते हैं।

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥
सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥

(गीता ९। १३-१४)

परंतु हे कुन्तीपुत्र! दैवी प्रकृतिके आश्रित महात्माजन मुझको

प्रवचन—दिनांक १३-७-१९३९

सब भूतोंका सनातन कारण और नाशरहित अक्षरस्वरूप जानकर अनन्यमनसे युक्त होकर निरन्तर भजते हैं।

वे दृढ़ निश्चयवाले भक्तजन निरन्तर मेरे नाम और गुणोंका कीर्तन करते हुए तथा मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करते हुए और मुझको बार-बार प्रणाम करते हुए सदा मेरे ध्यानमें युक्त होकर अनन्य प्रेमसे मेरी उपासना करते हैं।

सोलहवें अध्यायमें निम्न तीन श्लोक धारण करनेके हैं—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत॥

(गीता १६। १—३)

भयका सर्वथा अभाव, अन्तःकरणकी पूर्ण निर्मलता, तत्त्वज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर दृढ़ स्थिति और सात्त्विक दान, इन्द्रियोंका दमन, भगवान्, देवता और गुरुजनोंकी पूजा तथा अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्मोंका आचरण एवं वेद-शास्त्रोंका पठन-पाठन तथा भगवान्‌के नाम और गुणोंका कीर्तन, स्वधर्मपालनके लिये कष्टसहन और शरीर तथा इन्द्रियोंके सहित अन्तःकरणकी सरलता मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय भाषण, अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोधका न होना, कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका त्याग, अन्तःकरणकी उपरति अर्थात् चित्तकी चंचलताका अभाव, किसीकी भी निन्दादि न करना, सब भूतप्राणियोंमें हेतुरहित

दया, इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर भी उनमें आसक्तिका न होना, कोमलता, लोक और शास्त्रसे विरुद्ध आचरणमें लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, बाहरकी शुद्धि एवं किसीमें भी शत्रुभावका न होना और अपनेमें पूज्यताके अभिमानका अभाव—ये सब तो हे अर्जुन! दैवी सम्पदाको लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण हैं।

त्यागनेके लिये यह श्लोक है—

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम्॥

(गीता १६। ४)

हे पार्थ! दम्भ, घमण्ड और अभिमान तथा क्रोध, कठोरता और अज्ञान भी—ये सब आसुरी-सम्पदाको लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण हैं।

सत्रहवें अध्यायमें चौदहसे सत्रहतक धारण करनेयोग्य बातें हैं—

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥
मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥
श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते॥

(गीता १७। १४—१७)

देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनोंका पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा—यह शरीरसम्बन्धी तप कहा जाता है। जो उद्वेग न करनेवाला, प्रिय और हितकारक एवं

यथार्थ भाषण है तथा जो वेद-शास्त्रोंके पठनका एवं परमेश्वरके नाम-जपका अभ्यास है—वही वाणीसम्बन्धी तप कहा जाता है। मनकी प्रसन्नता, शान्तभाव, भगवच्चिन्तन करनेका स्वभाव, मनका निग्रह और अन्तःकरणके भावोंकी भलीभाँति पवित्रता—इस प्रकार यह मनसम्बन्धी तप कहा जाता है। फलको न चाहनेवाले योगी पुरुषोंद्वारा परम श्रद्धासे किये हुए पूर्वोक्त तीन प्रकारके तपको सात्त्विक कहते हैं।

यही कर्तव्य है कि दैवी सम्पदाके लक्षण धारण करें। आसुरीके त्याग करें एवं इन स्थलोंमेंसे किसी एक स्थलके चार श्लोक काममें ले लें। तीनों स्थलोंके बारहों श्लोक काममें ले लें तब तो फिर कहना ही क्या है?

प्रश्न—श्रद्धा-प्रेमकी बातें होनी चाहिये।

उत्तर—श्रद्धाकी बात तो समझमें आती है, परन्तु श्रद्धा करनी और करवानी नहीं आती। करनी आती तो मैं किसीमें करता, करवानी आती तो किसी दूसरेकी करवा देता। दोनों ही नहीं आती केवल बातें आती हैं। श्रद्धाका रूप तो आपलोगोंको बताया जा सकता है। पर वह हो कैसे?

शास्त्रोंमें जैसी श्रद्धा लिखी है, ऐसी श्रद्धा मनुष्योंमें देखनेमें कम ही आती है। ऐसे श्रद्धालु व्यक्ति संसारमें देखनेमें नहीं आये। जिनमें **'परया श्रद्धया'** जैसी भगवान् कहते हैं, वैसी हो। जिसे परम प्रेमी कह सकें, ऐसे प्रेमी भी वर्तमानमें नहीं मिले। उदाहरण तो गोपियाँ, भरतजी, प्रह्लादजीके दिये जाते हैं, पर वर्तमानमें नहीं मिले। स्वार्थ त्यागकर आज्ञापालन करनेसे परम प्रेम होता है। आज्ञापालनके समान कोई सेवा नहीं है। हमारे देखनेमें ऐसी श्रद्धा किसीकी नहीं होनेपर भी चेष्टा करनेसे हो

सकती है, यह विश्वास रखना चाहिये। आजतक हमारी मुक्ति नहीं हुई, पर अब तो हो सकती है। मान लो, आजीवन चेष्टा करनेपर भी नहीं हुई तो भी हमारी कोई हानि नहीं हुई। इस जन्ममें न सही, अगले जन्ममें बात बन सकती है। श्रद्धाकी बात तो बहुत दूरकी है। भगवान् अर्जुनसे कह रहे हैं इन कौरवोंको तू देख। बस, इतने शब्दोंमें ही जैसे कोई मोहिनी मन्त्र हो गया। केवल गुरु, दादा, चाचा, सगे-सम्बन्धी दीखते हैं। इनको मैं कैसे मारूँ? भगवान् जोश दिलाते हैं। **'क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ'** आदि कहते हैं। अर्जुन कहता है—ये पूजनीय हैं, इन्हें बाणोंसे कैसे मारूँ? पर अन्तमें भगवान्की बात मानकर सबका संहार किया ही। आज कोई हमें कहे तो घरवालोंको मारना तो दूर रहा, छोड़नेके लिये भी कहे तो कठिन है। क्षत्रियके लिये मारनेकी बात है, ऐसे ही ब्राह्मण, वैश्य सब देख लें।

किसी वैश्यको धन छोड़नेके लिये कोई कहे तो पहला प्रश्न उठेगा शरीर-निर्वाह कैसे होगा? यदि कहे कि निर्वाह जाये चूल्हेमें तो कहेगा सोचेंगे। दूसरेको मारनेमें तो हिंसा है, किसीको कहा जाय कि अपना अंग काटकर दे दो तो कौन सुनेगा।

धनके त्यागकी बात ही कठिन है। गीताप्रेसका धन तो सार्वजनिक है। यदि बाढ़ आदि कामोंमें दिया जाता है, तब तो सबके लिये ठीक है, परन्तु यदि मैं किसी दूसरे आदमीको दस-पाँच बार इस प्रकार दूँ तो लोगोंकी दृष्टिमें ठीक नहीं होगा तो लोग कहने लगेंगे कि इनका माथा खराब हो गया, चेष्टा करने लगेंगे कि न दिया जाय।

श्रद्धा करानेकी बात तो मेरे बसकी नहीं है। हटानेका रास्ता मुझे आता है। दो साधक महात्माओंकी बात—राजा उनके

दर्शनके लिये आये। उन्होंने सोचा कि इस तरह राजा आने लगेंगे तो हमारा समय तो लोगोंकी नौकरी आदिकी सिफारिशमें ही बीतेगा, भजन-साधन कैसे होगा? वे दोनों आपसमें रोटियोंके लिये लड़ने लगे। एक कहता—मैं पाँच लूँगा। दूसरा कहने लगा—मैं पाँच लूँगा। बस, इतनेमें ही राजा, मन्त्री, गाँवके लोग सबकी श्रद्धा उड़ गयी। सन्तोंने चाहा और लोगोंकी श्रद्धा उड़ गयी, इसी प्रकार श्रद्धा उठाना तो सहज है, करायी कैसे जाय?

मुझे तो सब साधनोंकी जड़ वैराग्य ही प्रतीत होता है। वैराग्यके विषयमें तो आपलोग पुस्तकोंको देखकर ही बढ़ावेंगे तो ठीक है। मेरी ओर देखेंगे तो आपलोग मेरेसे अधिक त्यागी ही मिलेंगे। भोजन-कपड़ा आदिमें तो आपलोग (स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजको लक्ष्य करके) मुझसे त्यागी हैं ही। मेरेसे तो देखनेमें घनश्याममें ही वैराग्य अधिक दिखायी देता है, भीतरकी तो राम जाने। रातको ही भाईजीने दो तख्त लगवाये थे। मैं तो सो गया, घनश्याम नीचे ही सोया।

आपलोगोंपर इस व्यवहारसे त्यागका प्रभाव कैसे पड़ेगा। पूर्वके जमानेमें अच्छे त्यागी साधुओंको कहीं-कहीं लोग आराम-भोग आदि देकर गिरा देते थे। लोग तो उन्हें आराम ही देते, पर आराम आदि मनुष्यको स्वाभाविक ही प्रिय होनेके कारण कहीं-कहीं इस प्रकार हानि हो जाती है।

अच्छे पुरुषोंको दूसरोंकी प्रसन्नताके लिये भी अपने अभ्यास, संयम आदिके नियमोंको जहाँतक हो सके छोड़ना नहीं चाहिये।

निष्काम कर्मयोग, भगवान् एवं महात्माकी एकता तथा श्रद्धाका विषय

प्रश्न—मुक्तिका स्वार्थ भी न हो तो आधार क्या रहे?

उत्तर—विशुद्ध प्रेम, हेतुरहित प्रेम, अनन्य प्रेम, अहैतुकी भक्ति, इनके समान संसारमें कोई चीज नहीं है। मान लें आप सब लोग मेरे साथ प्रेम करते हैं। जो मुझसे हेतुरहित प्रेम करता है वह मुझे भी बेच सकता है। मुक्तिकी इच्छासे प्रेम करनेवाला मुझे नहीं बेच सकता। उसकी सीमा मुक्तितक है। मान-प्रतिष्ठाके लिये करनेवालेकी सीमा वहींतक है। आराम, भोग, वेतनवृद्धिके लिये करनेवाले तो बस इतनेमें ही संतुष्ट हैं, वे तो मामूली चीजमें ही संतुष्ट हैं। जो रुपयोंको कोई चीज नहीं समझते, उदाहरणके लिये एक नाम ले लिया जाय। स्वामीजी महाराजने काम किया, ये रुपया तो लेते नहीं, क्या करें, इनको मान-बड़ाई दे दी, कहा जाय कि ये नहीं होते तो तत्त्वांकका यह रूप होता ही नहीं। जगह-जगह यह बात कही जाय। स्वामीजीका मन इनको समझा दे कि अच्छे पुरुष सच्ची प्रशंसा करते हैं, अपना समय अच्छा ही बीता, यह मानकर प्रसन्नतापूर्वक बड़ाई स्वीकार कर लें। मदनलालजी, रामलालजीने आठ महीनोंतक गायोंका काम किया, यदि इनको वेतनकी बात कही जाय तो इनको दुःख ही होगा। इनको एक तरह अपमान ही

प्रवचन—दिनांक ६-८-१९४०, गोरखपुर।

प्रतीत होगा, पर यदि यह बड़ाई की जाय कि ये लोग न होते तो इस प्रकार काम नहीं होता। यह बड़ाई सुनकर यदि इन्हें प्रसन्नता हो तो समझ लो कि ज्यादा अन्तर नहीं है। अन्तर तो है ही, पर बड़ाई सुनकर सुखी हुए। धनसे भी सुख ही तो होता। वास्तवमें तो धनको न चाहनेवालेको धन लेनेकी बात सुनकर दुःख होता है, वैसा ही दुःख बड़ाई सुनकर हो तब समझना चाहिये कि बड़ाईके लिये काम नहीं हुआ। जिनको बड़ाई सुनकर दुःख हो, उनको यह बात कही जाय कि यदि ऐसे काम दो-तीन बार करो तो अन्तःकरणकी शुद्धि होकर तुम्हारा काम हो जायगा। मान लो कि घनश्यामको कहा जाय कि भूकम्पका काम तुमने जिस प्रसन्नतापूर्वक किया, उसे देखकर तुम्हें एक काममें और भेजेंगे। जिसे करनेसे तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध होकर तुम्हारा कल्याण हो जायगा। यह बात सुनकर उसको प्रसन्नता हो कि अबकी बार कल्याण हो जायगा तो उसका मेरे साथ प्रेम मुक्तिके लिये ही है, अन्यथा धन न चाहनेवालेको धन देनेपर, मान-बड़ाई न चाहनेवालेको मान-बड़ाई देनेपर जो कष्ट होता है, वही कष्ट मुक्ति न चाहनेवालेको मुक्ति देनेपर होना चाहिये। वही व्यक्ति भगवान्को बेच सकता है। इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठता है। विशुद्ध प्रेम जिसमें मुक्तिकी भी इच्छा न हो, उसका यह नमूना है।

मान लो घनश्याम बीमार पड़ा। वैद्य कहते हैं शरीर नहीं बचेगा। मैंने कहा—काशी चलो, वहाँ मुक्ति निश्चय है। भगवान्को याद करनेकी चेष्टा भी की जायगी, जिससे भैरव यातना भी न भोगनी पड़े। घनश्यामने स्वीकार किया यह सब अच्छा है, पर हम दोनोंकी मित्रता इतनी विशुद्ध नहीं हुई। बीचमें मुक्तिकी

इच्छा है। हमको तो यह भी बहुत अच्छा लगता है, क्योंकि हमको तो ऐसे प्रेमी भी कम मिलते हैं।

धन चाहनेवालोंकी अपेक्षा मुक्ति चाहनेवालेके समीप जानेकी विशेष चेष्टा होती है, मुक्तिको भी न चाहनेवाला इससे भी विशेष है।

जैसे कहा कि आत्माके उद्धारके लिये यह काम करना ठीक है। इसको सुनकर अगर घनश्याम कहे कि इस कामके बीचमें आत्माके उद्धारकी बात क्यों कही गयी। क्या मैं ऐसे काम नहीं करता। जैसे किसीको कहा जाय कि यह काम करो तो पचास रुपयेके स्थानपर सत्तर रुपया महीना दिया जायगा। रुपया न चाहनेवाले पुरुषको यह बात सुनकर जैसे दुःख होता है, वैसे ही आत्माके उद्धारकी बात सुनकर दुःख हो सकता है। शास्त्रमें सभी प्रकारके उदाहरण मिल सकते हैं—

नचिकेताको कितने प्रलोभन दिये गये, गाना बजाना, आयु, भोग आदि; पर उसने स्वीकार नहीं किया। यमराजने उसकी प्रशंसा की कि तू मुक्तिका पात्र है। तेरे जैसा अधिकारी मुझे मिला। यह बात उसने प्रसन्नतापूर्वक सुन ली तो यमको तीन वल्लीतकका उपदेश देना पड़ा। अगर यह बड़ाईकी बात भी वह नहीं सुनना चाहता तो उसका निष्कामभाव और भी उत्तम होता, वह और उच्च श्रेणीका पात्र समझा जाता। मुक्तिकी इच्छा नहीं करता तो और भी विशेषता थी। धन आदिका तो त्याग था, पर बड़ाईकी इच्छा उसमें भी मिली।

जो कुछ भी नहीं चाहते वे सबसे श्रेष्ठ हैं। भगवान् प्रह्लादपर प्रसन्न हुए, बोले वर माँग। प्रह्लादने कहा—आप माँगनेको कहते हैं इससे प्रतीत होता है कि मुझमें कुछ इच्छा है, तभी तो आप

व्यापारकी बात कह रहे हैं। मेरी भक्तिके बदलेमें कुछ देना चाहते हैं। आप माँगनेके लिये कह रहे हैं, इससे प्रतीत होता है कि मेरेमें इच्छा है। मैं यही माँगता हूँ कि मेरी वह इच्छा ही नष्ट हो जाय। प्रह्लादको वरदान माँगनेकी बात कहना ही सहन नहीं हुआ। इतना निष्काम था। मनमें लज्जित हो गया। भगवान्ने प्रह्लादसे क्षमा माँगी कि मेरे आनेमें विलम्ब हुआ।

प्रह्लादने लौकिक पदार्थोंकी इच्छा तो की ही नहीं। भारी संकट पड़नेपर भी कोई प्रार्थना नहीं की। मुक्तिकी इच्छाका त्याग किया। भगवान्के मिलनेपर भी इस प्रकारकी कोई बात माँगना उसने स्वीकार नहीं किया। प्रह्लाद निष्कामी भक्त था।

असली निष्कामभाव भगवत्प्राप्त पुरुषोंमें तो होता ही है, पर निष्कामका तत्त्व जाननेवाले उच्च साधकोंमें भी होता है। जो व्यक्ति किसीकी सेवा-भक्ति करके बदलेमें कुछ भी नहीं लेते, उसके प्रति वह ऋणी हो जाता है। भगवान् हनुमान्से कहते हैं— मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ, ऋणी हूँ, तुम्हारा प्रत्युपकार कर ही नहीं सकता। तुम्हारा ऋण चुकाना भी नहीं चाहता, क्योंकि तुम्हारेपर आपत्ति पड़े, तब ऋण चुकानेकी बात हो। मैं यह इच्छा ही नहीं करता कि तुम्हारेपर विपत्ति पड़े, इसलिये तुम्हारा ऋणी ही रहना चाहता हूँ। हनुमान्जीकी भक्ति निष्काम थी। यह तो नमूने हैं। हनुमान्, प्रह्लाद ऐसे पुरुष इस युगमें कहाँ?

हनुमान्जीके प्रति किसी भी कामकी आज्ञा हुई तो उनमें कितना उत्साह दिखायी पड़ा। कैसा भी काम हो, यही बात थी। उन्होंने कभी कोई माँग पेश नहीं की।

क्षेपकमें आता है कि उनके गलेमें बहुमूल्य हार डाला गया, वे उसे फोड़ने लगे। विभीषण अर्थार्थी थे उनके राज्यकी वह

सबसे बहुमूल्य भेंट थी जो श्रीजानकीजीको दी गयी थी। उन्होंने कहा फोड़-फोड़कर क्या देखते हो? हनुमान्‌जीके लिये तो वह सब कंकड़-पत्थर-से ही थे। वे बोले—देखता हूँ इसमें राम-नाम है या नहीं? विभीषणने पूछा—क्या सबमें होता है। हनुमान् बोले—जिसमें न हो वह चीज मेरे कामकी नहीं। हनुमान्‌से पूछा गया क्या तुम्हारे शरीरमें भी है? उन्होंने छाती फाड़कर दिखा दिया। यह बात चाहे क्षेपक हो पर कितनी निष्कामताकी है। हमें किसी निष्कामी भक्तकी आवश्यकता है, अभी कोई नहीं मिला। अगर निष्कामकी बात सुनकर आपलोगोंका प्रयत्न ढीला पड़ गया तो आप इस बातको ठीक समझे ही नहीं। यह तो ऐसा ही हुआ कि कोई सकाम उपासना करता था, उसको निष्कामभावकी बात कही गयी तो उसने सकाम उपासना और छोड़ दी। निष्कामका वह पात्र भी नहीं था। घाटेमें ही रहा। इसीलिये भगवान्‌ने कहा है—

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।

(गीता ३। २६)

परमात्माके स्वरूपमें अटल स्थित हुए ज्ञानी पुरुषको चाहिये कि वह शास्त्रविहित कर्मोंमें आसक्तिवाले अज्ञानियोंकी बुद्धिमें भ्रम अर्थात् कर्मोंमें अश्रद्धा उत्पन्न न करे।

उसको पात्र बनाकर ही निष्कामकी बात बतानी चाहिये। भक्त और भगवान् दो नहीं हैं। भगवान्‌में प्रेम करे तो वही बात है, भक्तमें करे तो वही बात है। प्रेमसे बढ़कर कोई चीज नहीं है।

जो सारे विश्वको आनन्द पहुँचाता है उसे आनन्द पहुँचाना चाहिये। इतना प्रेम करना चाहिये कि उनके सिवाय और किसीमें हमारा प्रेम न हो और हमारे सिवाय उनका किसीमें प्रेम न हो।

विश्वमें जितने लोग हैं, भगवान्‌में हमारा प्रेम सबसे बढ़कर हो। चाहे हमारेमें अमर्षका दोष घट जाय, पर भगवान्‌में हमारा प्रेम सबसे बढ़कर होना चाहिये। आगे जाकर तो उसमें दूसरोंका ज्ञान ही नहीं रहता। भगवान्‌का अनन्य प्रेमी होना चाहिये। भगवान्‌में अनन्य प्रेम करता रहे। यही ध्येय रखे कि आनन्दमय प्रभुको हमारी क्रियाओंके द्वारा आनन्द मिलता रहे। उनकी आज्ञा-संकेतके अनुसार अपना जीवन प्रसन्नतासे बिता दे।

भगवान्‌से इस प्रकारकी कामना करते हुए भी निष्कामता ही है। सब भगवान्‌के भक्त बन जायँ, सबका कल्याण हो जाय, यह उद्देश्य, यह इच्छा कामना होते हुए भी निष्काम ही है। प्रेमके लिये प्रेम करे। प्रेमकी चाह रहे तो कोई आपत्ति नहीं है। चाहना न रहे पर प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता रहे तो चाहनाकी भी कोई आवश्यकता नहीं है, कार्य हो रहा है। भोजनसे क्षुधा-निवृत्ति हो रही है, फिर क्षुधा-निवृत्तिकी चाहना करनेकी क्या आवश्यकता है, वह तो हो ही रही है।

प्रेम बढ़े वह क्रिया हो रही है, बस ठीक है काम जारी रहना चाहिये। भगवान्‌की प्राप्तिके साधनको भगवान्‌के मिलनेकी अपेक्षा भी ज्यादा आदर देना चाहिये। जिनका साधन बराबर चल रहा है, वही पुरुष श्रेष्ठ है। एक क्षण भी साधन छूटे तो पुत्र मरनेका-सा कष्ट हो। भगवान् आ रहे हैं, यह समाचार कोई सुनाये और उससे साधन छूटे तो यह भी बाधा ही हुई। वह तो आ ही जाता, आता तभी देख लेते। समाचार देनेसे विघ्न ही तो हुआ। क्या आश्चर्यकी बात है। आये तो उसका घर है, जब इतनी बेपरवाही हो, तब भगवान् समझें कि ये कितने दृढ़ भक्त हैं।

भगवान् उनके पास आते हैं, जो दृढ़ भक्त हैं। हम मन्दिर

जाते हैं तो मूर्ति बलवान् है। मूर्ति हमारे पास आये तो हम बलवान् हैं। स्वयं भगवान् आते हैं। उनके प्रेमकी चर्चा होती रहे, भगवान् आयें तो भी एक व्यक्तिको बाहर बैठा दे कि उनको न आने दो, बस, उनके प्रेमकी चर्चा होती रहे।

प्रारम्भसे ही निष्कामकी चाल बहुत कम व्यक्तियोंकी होती है। अधिकांश व्यक्ति पहले सकाम होकर ही बादमें निष्काम होते हैं। भगवान् तो भगवान् ही हैं, कोई उनकी एक भी आज्ञा मान ले तो बेड़ा पार है। किसी महापुरुषको भी भगवान् या भगवान्की तरह समझ ले तो उसकी आज्ञाकी भी यही बात है। आज्ञापालनका तो काम ही न पड़े, उसको भगवान् ही समझ ले तो भगवान्के दर्शनसे होनेवाली बात हो जाय। बस, भगवान् मिल जायँ।

भगवान्को यथार्थ रूपसे जब जाने तभी भगवान् हो गये। महात्माको जब यथार्थ जाने तभी महात्मा हो गये। हमलोगोंकी भाषामें महात्मा और भगवान् दो हैं, यह भेद अज्ञानियोंकी कल्पना है। जीवन्मुक्त और भगवान्की दृष्टिमें यह भेद नहीं है। मूर्खोंको समझानेके लिये ही भगवान्ने यह कहा **'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्'** भगवान् तो इतने उदार हैं कि कोई भी चीज उनसे भिन्न नहीं है। भगवान्की दृष्टिकी तो बात ही क्या, महात्माकी भी यही दृष्टि है। महात्माकी तो बात ही क्या, किसी-किसी साधककी भी यही दृष्टि अपनी साधनामें होती है।

अज्ञानियोंको समझानेके लिये ही भगवान् उनकी-सी भेद दृष्टिकी कल्पना करके उपदेश देते हैं। हिन्दी जाननेवालोंको हिन्दीमें ही समझाया जाता है। वास्तवमें अज्ञानियोंकी दृष्टिका क्या महत्त्व है। प्रशंसा तो समताकी ही की गयी है। ज्ञानियोंकी दृष्टि ही तो वास्तविक दृष्टि है। स्वप्नके संसारका मूल्य ही क्या

है। यही तो अज्ञानियोंकी दृष्टि है। ज्ञानियोंकी दृष्टिका अनुकरण करनेवाले साधककी दृष्टिका भी मूल्य है।

कामनावालोंसे तो संसार भरा ही पड़ा है। मरनेके बादके लिये कामना करते हैं। हम मर जायेंगे, आगेकी भी कामना करते हैं। पिंड चाहते हैं। बड़े आदरसे अपने लड़कोंके सामने श्राद्ध-तर्पण आदि करते हैं कि मेरे मरनेपर मेरे लिये भी यह ऐसे ही करे। बहुत-से लोग कह जाते हैं कि मेरा क्रियाकर्म ऐसे करना, मेरा स्मारक इस प्रकार बनाना। मरनेके बादके लिये भी लोग कामनाका पुल बाँधते हैं। जीवन्मुक्त महात्माओंमें ऐसी बात नहीं होती।

जीवन्मुक्तको महात्मा समझकर उनका नाम, स्वरूप आदिकी प्रतिष्ठा और प्रचार करनेवाले पाप तो नहीं करते, पर उन्होंने महात्माका तत्त्व नहीं जाना। यदि ईश्वरसे अभिन्न समझते तो ईश्वरका प्रचार ही उनका प्रचार है। उनके चित्रका प्रचार करनेवाले उनका तत्त्व कहाँ समझे। उनको ईश्वरसे भिन्न ही तो सिद्ध करते हैं। उनका शरीर महात्मा थोड़े ही है। ईश्वरका दिव्य शरीर रहते हुए नाशवान् शरीरका प्रचार क्यों करते हैं। तत्त्व जाननेवाले ऐसा क्यों करेंगे? गुरुके नाते करें तो वह करना दूसरी तरहका है। अपने गुरुका हम संसारमें प्रचार थोड़े ही करते हैं। महात्माको हम ऊँची-से-ऊँची बात कहते हैं तो यह कहते हैं कि हमें भगवान्‌के दर्शन करा दें। यह कहकर भी हम महात्माको नीचा ही गिराते हैं। उनकी क्या स्थिति है, इस बातको हम समझे ही नहीं।

प्रश्न—प्रचार क्या किया जाय?

उत्तर—वे कहें सो करे या उनका अनुकरण करे। भगवान्‌ने यही दो बातोंका अपना प्रमाण दिया—महात्माके लिये भी यही दो बातें कहीं—

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः॥
ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः॥

(गीता ३। ३१-३२)

जो कोई मनुष्य दोषदृष्टिसे रहित और श्रद्धायुक्त होकर मेरे इस मतका सदा अनुसरण करते हैं, वे भी सम्पूर्ण कर्मोंसे छूट जाते हैं।

परन्तु जो मनुष्य मुझमें दोषारोपण करते हुए मेरे इस मतके अनुसार नहीं चलते हैं, उन मूर्खोंको तू सम्पूर्ण ज्ञानोंमें मोहित और नष्ट हुए ही समझ।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

(गीता ३। २१)

श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, समस्त मनुष्यसमुदाय उसीके अनुसार बरतने लग जाता है।

जो बातें इस समय कही गयी, वे सभी जनसामान्यमें नहीं कही जा सकती। यहाँ तो हमलोग आमोद-प्रमोदमें जो चाहे सो कह सकते हैं। जनसामान्यमें तो एक-एक शब्द नीतिसे तौलकर कहे जाते हैं। हजारोंमें भी यदि और भी अन्तरंग दो-चार व्यक्ति हों तो इतना संकोच भी न हो, जितना कुछ अभी होता है।

खीर बड़ी अच्छी चीज है, पर मन्दाग्निवालेको खिलानेसे मना करना ही पड़ता है।

आज एक व्यक्तिकी चिट्ठी आयी कि वर्तमानमें जो ज्ञानी

पुरुष हों उनका नाम लिखें। यही उत्तर लिखवाया गया कि ज्ञानी पुरुषोंको हम नहीं जानते। इस उत्तरमें बहुत कुछ रहस्य है।

इस उत्तरसे इतनी बात तो समझ सकता है कि ज्ञानी स्वसंवेद्य है, परसंवेद्य नहीं। जो व्यक्ति महात्मासे कहता है कि भगवान्‌के दर्शन करा दें। वह अच्छा व्यक्ति है। महात्मा भी उसको अच्छा ही समझता है। भावुक है, महात्माके तत्त्वको जाननेवाला नहीं है। एक महात्माने अपने शिष्यको एक पत्थर दिया और कहा इसका मूल्य लगवा लाओ, बेचना नहीं है। सब्जी बेचनेवाली, साधारण दुकानदार, जौहरी, बड़ा जौहरी सबने अलग-अलग मूल्य बताये। राजाने अच्छे-अच्छे जौहरी इकट्ठे किये। वे बोले हमने ऐसा रत्न नहीं देखा, यदि कीमत लगायी जाय तो इतना ही कह सकते हैं कि आपका सारा राज्य देकर भी यह मिल जाय तो ले लें, महात्मासे पूछ लें, महात्माने कहा कीमत नहीं आयी। भक्तोंने कहा—समझाइये। महात्माने लोहा छुआया और सोना बन गया तथा कहा—इस पारसकी कीमत अब बतलाओ। सब लोहेको सोना बनाकर भी पारस वैसा-का-वैसा ही है।

राजाके जौहरियोंने कीमत तो सबसे अधिक लगायी, पर समझा रत्न ही, उसका तत्त्व नहीं जाना कि सारी कीमत इससे निकलती है।

ईश्वरको, महात्माको जितनी दूरतक मनुष्य जान जाता है, वास्तवमें उतनी दूरतक उसकी स्थिति उसी समय बदल जाती है। जानते ही यह हो जाता है। पूरा जाने तो पूरी स्थिति हो जाती है।

जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण थे, उस समय सभी तरहके लोग थे। जाननेकी बात भी कहते थे, पर भगवान्‌ने जिसको

स्वीकार किया कि ये जानते हैं, वही जानते थे। अर्जुनसे भगवान्का इतना प्रेम था कि भगवान् उनका घोड़ा हाँकते हैं, तब भी कहते हैं—**'न त्वं वेत्थ परंतप'** तुम नहीं जानते। जाननेका पात्र होनेसे ही भगवान् जनाते हैं। भगवान्की कृपा होनेसे ही पात्र बनता है।

वास्तवमें बहुत उच्च श्रेणीके महात्मा संसारमें बहुत ही कम हैं। उनमें भी बहुत-से तो गुप्त ही रहते हैं। मिल भी जायँ तो जानना कठिन है। बड़ी कठिन बात है। परीक्षा बुद्धि न हो तो ठगोंके धोखेमें पड़ जाय। वे महात्मा परीक्षासे नहीं जाने जाते। परीक्षा करो तो मुश्किल, न करो तो मुश्किल।

प्रश्न—फिर कैसे जानें?

उत्तर—ईश्वरसे प्रार्थना करें। वही मिला सकता है। यों तो साक्षात् ईश्वर भी आकर कह दें तो भी बिना श्रद्धाके नहीं जाना जाता। कितने ऋषि-मुनियोंने कहा, भगवान्ने स्वयं कहा तब भी दुर्योधनने कहाँ समझा। हमलोग भी कहाँ समझते हैं, चाहे जिसके धोखेमें पड़ जाते हैं।

प्रश्न—कैसे?

उत्तर—इन सज्जनको बालकोंकी तरह समझाया गया कि जहाँ लोभ है, रुपयोंकी चाह है, वहाँ महात्मा कहाँ है? सरलता कहाँ है, पर कहाँ मानते हैं। तार दे दिया कि महात्मा कहते हैं हमारी इज्जत नहीं बिगड़ेगी, किन्तु बिगड़ गयी। क्या समझाया जाय। जितनी बात कहते हैं सबके उदाहरण मिल सकते हैं। बात तो कही जाती है, उदाहरण नहीं दिये जाते।

प्रश्न—उदाहरण देनेपर स्पष्ट समझमें आ जाता है।

उत्तर—व्यक्तिगत होनेके कारण किसीको दुःख न हो,

इसलिये नहीं कह पाता, फिर भी पूछो तो दिया जाता है। घनश्यामने पूछा तो उदाहरण दे दिया गया।

उदाहरण—सत्यकामको गायें चरानेकी आज्ञा मिली। उसने कहा चार सौ ले जाता हूँ, जब एक हजार हो जायँगी तो ले आऊँगा। गुरुने कुछ उत्तर नहीं दिया, मौन रहे। उसने सम्मति समझ ली बस, कोई युक्ति-तर्ककी बात नहीं। एक हजार होते ही परमात्माका ज्ञान हो गया। एकलव्यका दृष्टान्त क्या कम है? द्रोणने भी नहीं जाना। उसका उद्देश्य परमात्माकी प्राप्ति नहीं था, पर जो उद्देश्य था वह पूरा हुआ। उपकौशल, शाकल्य इनके उदाहरण आते हैं। एकने वर्षोंतक गुरुकी सेवा की, गुरुने उपदेश ही नहीं दिया। लकड़ी लाया तब जटा उलझ गयी, कुछ बाल अटक गये। सामने आये तो पता लगा कि बाल सफेद हो गये। मनमें आया कि अड़तालीस वर्ष यहाँ हो गये, गुरुपर विश्वास है कि गुरु जानते हैं मैं पात्र नहीं बन सका, अब तो पात्र बनूँगा तभी भोजन करूँगा। यह विचार कोई ऊँचे दर्जेका नहीं है। यह उदाहरण सत्यकामके जैसा नहीं है। गुरुपत्नीने उसकी सिफारिश की। सत्यकामने कोई उत्तर नहीं दिया। उसको तो अनुभव था, जब मुझको हुआ तब इसको क्यों नहीं होगा। अग्नियाँ कुण्डसे साक्षात् मूर्तिमान् होकर उसको उपदेश देने लगीं। गुरुने उसका चेहरा देखकर पूछ लिया कि तुमको किसने उपदेश दिया। इसकी श्रद्धा सत्यकामकी अपेक्षा कम है तभी तो विलम्ब हुआ।

गीतामें जगह-जगह भगवान् पुकार-पुकारकर श्रद्धा-श्रद्धा कह रहे हैं। श्रद्धाकी कितनी पुनरुक्ति हुई है, कुछ ठिकाना नहीं। हरेक जगह यही है। यहाँतक मर्यादा बाँध दी '**श्रद्धामयोऽयं**

पुरुषः' पुरुष श्रद्धामय ही है। जिसकी जैसी श्रद्धा है, उसकी वैसी ही स्थिति है।

अपने लोगोंको किसी समय किसीपर भी उत्तेजना होती है। यह श्रद्धाकी ही तो कमी है। किसीपर भी क्रोध नहीं होना चाहिये। प्रथम तो क्रोध हुआ तो ईश्वरमें श्रद्धा ही नहीं है। मनके प्रतिकूल हो तभी तो क्रोध होता है। हमारे प्रतिकूल है पर प्रभुके तो सब अनुकूल है। अच्छे पुरुषोंके सामने क्रोध होता है तो उन पुरुषोंपर श्रद्धा नहीं है। श्रद्धा होती तो उनको जान जाते। उनके सामने तो द्वेष-क्रोध हो ही नहीं सकता। जो उनको नहीं जानते, उन्हें भी उनके सामने द्वेष-क्रोध नहीं होते, तब जाननेवालेको तो हो ही कैसे? वह तो उनका अपमान ही करता है। यह कहा जाय तो भी अत्युक्ति नहीं है। अच्छे पुरुषके सामने किसीपर भी क्रोध आ जाय तो महात्माका अपमान है। क्रोध करनेवाला तो पापका काम करता ही है पर उनकी विशेष कृपा है, इसलिये नहीं लगता।

प्रश्न—उदाहरण दीजिये।

उत्तर—माता-पिता आदिके सामने भी यदि हम किसीपर क्रोध करते हैं तो उनका तिरस्कार ही करते हैं। जब हम उनके आधीन हैं तो हमें क्या पंचायत है। दूसरे यही समझते हैं कि यह अपने गुरुजनोंके आधीन नहीं है। राजसभामें शिशुपालने गालियाँ दीं। भीष्मको, युधिष्ठिरको क्रोध नहीं आया। भीमको क्रोध आ गया, वह बोलने लगा तो भीष्मजीने समझाया। भगवान् बैठे हैं, सर्वसमर्थ हैं, तुम चुप रहो। युधिष्ठिर भीमके व्यवहारको अनुचित बताते हैं। भीष्म शान्त रहे।

भगवान्‌का चक्र लेकर भीष्मको मारनेके लिये दौड़नेकी बात अलौकिक थी। श्रद्धासे ही समझमें आनेवाली है। भगवान्‌की ही लीला थी।

महात्माको पूर्णरूपसे जाननेकी बात तो अलग रही, उनको साधारण जाननेपर भी दोष नहीं रह सकते। अगर उनके सामने रहनेपर भी दोष रहें तो उन्हें जाना ही नहीं।

सूर्य उदय हो जाय तो अँधेरा नष्ट हो जाता है। पूर्णिमाके चन्द्रमासे भी अँधेरा दूर हो जाता है। बिजलीके प्रकाशसे भी कमरेका अँधेरा तो चला ही जाता है। कामकाज तो चल ही जाता है। उस प्रकाशसे दूर जानेपर अँधेरा हो जाता है, पर उस प्रकाशमें तो नहीं है। इतना अन्धकार तो नष्ट हो ही जाता है।

सूर्य उदय होनेसे तो दुनियाका अँधेरा चला जाता है, यह पूर्ण जानना है। चन्द्रोदयका जानना साधारण जानना है। बिजलीका बिलकुल मामूली है। इतना भी न हो तो जानना ही नहीं है। गुरु शब्दका अर्थ अन्धकारको नाश करना ही तो है। अगर यह न हो तो गुरुका अर्थ ही नहीं घटता।

प्रश्न—जिनको महापुरुषोंके सामने भी क्रोधादि आता है, उन्होंने कुछ नहीं जाना। पर यदि उनको संग मिलता रहता है, वे टिके हैं तो यह कौनसे पुण्योंका फल है।

उत्तर—उनपर भी कभी-कभी तो बिजलीका प्रकाश पड़ता रहता है, सदा एक-सा नहीं रहता। बिजली घरमें गड़बड़ चलती रहती है। अन्तःकरणमें श्रद्धा है, उसके अनुसार कभी प्रकाश, कभी अँधेरा होता रहता है, यन्त्र अच्छा हो तो प्रकाश ठीक रहता है।

प्रश्न—यन्त्र अच्छा कैसे रहे?

उत्तर—सहन करे। हमारे काममें हर्ज होता है, भगवान्‌की कृपासे ही होता है। भगवान्‌से प्रार्थना करे। महात्मासे करे। सीधा रास्ता समझ जाय।

महात्माओंका वास्तविक तत्त्व जाननेपर तो सब सवाल हल हो जायँ। सोलह आना नहीं जाने तब भी चिन्ता, भय, शोक ये सब तो समाप्त हो ही जायँ। महात्माको यथार्थ रूपसे न जाने, महाराजा न जाने, उसके नीचेके राजा हैं उनको जान ले, तब भी चिन्ता, भय, शोक—ये सब तो चले ही जायँ। उदाहरण—डूँगजी, जुहारजी डकैत थे। डूँगजी आगरे जेलमें कैदी थे, जुहारजी ऊपरसे कूदकर आये, डूँगजीकी बेड़ी काटने लगे। वे बोले—सबकी काटो, सबकी काट दी एवं पहरेदारोंको मारकर भागे। एक बीकानेर महाराजके पास गया, एक जोधपुर महाराजके पास गया। उन दोनोंसे स्पष्ट कह दिया कि हम सरकारके अपराधी हैं। आप रख सकें तो रख लें, दोनोंने आश्रय दे दिया। सरकारको पता लग गया। उन्होंने माँगा, बीकानेर महाराजने स्पष्ट कह दिया—हमारे पेटमें है, चीरकर ले लो, सरकार चुप रह गयी। जोधपुर महाराजने दे दिया। उसने कहा—तुमने विश्वासघात किया है, तुम्हारे कीड़े पड़ेंगे। जोधपुर महाराजकी यही दशा हुई। सच्चे भक्तके आश्रित होनेपर निर्भय निश्चिन्त हो गये।

भगवान्‌के साथ यह उदाहरण नहीं लगता। इसमें महात्माओंका दर्जा बहुत नीचा उतर गया। बीकानेर महाराजने सच्चा जवाब दे दिया, हमारे पेटमें है। हमको मारकर ले जा सकते हैं। यह बात ही चलती है, यह असली बात है।

महात्माको, ईश्वरको जो आदमी जितनी दूरतक जानता है उतनी दूरतक उसकी अवस्था उसी समय बदल जाती है। बड़ी कठिन बात है। इस तरहसे परमात्माकी दयासे ही होता है।

जहाँतक हो दोषदृष्टि नहीं रखनी चाहिये, गुणोंमें अवगुण न देखना ही सबके लिये हितकी बात है। फिर भगवान् किसीपर भी श्रद्धा करा देते हैं। हम दोषदृष्टि नहीं करेंगे तो कुछ बचाव है। परमात्मापर विश्वास-भरोसा रखेंगे तो झूठे महात्माओंसे हम बच सकेंगे। परमात्मापर जो भरोसा करते हैं, परमात्मा उनकी रक्षा करते हैं। जो पुरुष ईश्वरकी शरण है, वह ईश्वरका धन हो गया। डाकू व्यर्थ धन ही लूटते हैं। इस सरकारकी डाक भले ही कोई लूट ले, पर उस सरकारके राज्यमें यह गड़बड़ी हो ही नहीं सकती। यदि ईश्वर कोई चीज है तो ईश्वरके भरोसेवाले श्रद्धालुको कोई भय नहीं है, उसको निर्भय रहना चाहिये। ईश्वरको बाध्य होकर उसकी उतनी ही शीघ्र सम्हाल लेनी पड़ती है। जितना उसका भरोसा होता है, ईश्वरपर उतना ही उसका दायित्व आ जाता है।

गीताका एक श्लोक धारण करनेसे कल्याण

विवेक-वैराग्यसे हमलोग निश्चय करते हैं कि मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा नहीं चाहनी चाहिये, पर अवसर पड़नेपर स्वीकार हो जाती है। महापुरुष तो वह है जो इनके प्राप्त होनेपर इन्हें विष्ठाके समान समझता है। मान-अपमान तो शरीरका होता है, शरीरके मान-अपमानको अपना मानना—यही तो अज्ञान है। लोग जयदयालकी प्रशंसा करते हैं, क्या मैं जयदयाल हूँ, अगर मैं जयदयालकी निन्दा-प्रशंसा अपनी मानूँ तो यही अज्ञान है। जबतक देहाभिमान है तबतक जीते हुए भी आपको भय है और मरनेपर भी भय है। मनुष्य निर्भय तो तभी हो सकता है, जब उसको निश्चय हो जाता है कि शरीरके नाशसे उसका नाश नहीं है।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

(गीता २। २०)

यह आत्मा किसी कालमें भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला ही है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है, शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता।

गीताका एक श्लोक भी धारण कर लें तो कल्याण हो जाय। यह आत्मा न कभी जन्मता है न कभी मरता है—यह आपको निश्चय हो गया तो आप निर्भय पदको प्राप्त हो गये। कोई भय नहीं रहता, न राजका, न कैदका, न यमराजका, यह निश्चय नहीं

प्रवचन—दिनांक ७-८-१९४०, गोरखपुर।

हुआ तो आपका समय व्यर्थ ही गया। कुत्तेकी मौत और आपकी मौतमें कोई अन्तर नहीं है। विषपान करनेवाले हजारोंमें कोई एक ही विषको हजम कर सकता है। यही बात मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाके विषयमें है। यह विष है। आराम-भोग आदिको साधनमें बाधक समझकर ठुकरा देना चाहिये। परमात्माकी प्राप्ति कायरोंका मार्ग नहीं है। भगवान् कहते हैं—

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप॥

(गीता २। ३)

इसलिये हे अर्जुन! नपुंसकताको मत प्राप्त हो, तुझमें यह उचित नहीं जान पड़ती। हे परन्तप! हृदयकी तुच्छ दुर्बलताको त्यागकर युद्धके लिये खड़ा हो जा।

यह नपुंसकता तुम्हारे योग्य नहीं है। हृदयकी दुर्बलताको निकाल डालो। इन्द्रियोंके साथ युद्ध करना है, मनको वशमें करना है। हमलोगोंको सचेत हो जाना चाहिये। ऐसा अमूल्य जीवन पाकर, ऐसी सामग्रियाँ पाकर, ऐसा मौका पाकर भी हम जन्में और मरें तो हमारे लिये कितनी लज्जाकी बात है। हमें धिक्कार है, यदि हम कूकर-सूकरकी तरह ही जन्मते और मरते हैं। हमारे साधनकी कमजोरी, बुद्धिकी कमजोरी और हमारी मूर्खताकी बात है। भगवान् कहते हैं—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥
तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा॥

(गीता ६। २२-२३)

परमात्माकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और परमात्मप्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित योगी बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता।

जो दुःखरूप संसारके संयोगसे रहित है तथा जिसका नाम योग है, उसको जानना चाहिये। वह योग न उकताये हुए अर्थात् धैर्य और उत्साहयुक्त चित्तसे निश्चयपूर्वक करना कर्तव्य है।

भारी दुःख पड़नेपर भी प्रह्लादकी तरह अटल रहना चाहिये। जिसका नाम योग है, जहाँ दुःखोंका अभाव है उस साधनको अवश्य करना चाहिये। वैराग्ययुक्त चित्तसे कटिबद्ध होकर हमको इस काममें लगना चाहिये। कैसे लगें? प्रभुकी कृपासे या महापुरुषोंकी कृपासे, हमारी समझमें जो महान् पुरुष हों उनका संसर्ग करना चाहिये, इसके सिवाय हमारे पास और कोई मार्ग नहीं है। अच्छे पुरुषका मिलना परमात्माकी कृपासे ही होता है। उनके दर्शन, भाषण, स्पर्श, चिन्तनसे ही चित्त स्थिर होकर परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है—

वीतरागविषयं वा चित्तम्।

जिस पुरुषके राग-द्वेष सर्वथा नष्ट हो चुके हैं, ऐसे विरक्त पुरुषको ध्येय बनाकर अभ्यास करनेवाला अर्थात् उसके विरक्त भावका मनन करनेवाला चित्त भी स्थिर हो जाता है।

यथाभिमतध्यानाद्वा।

उपर्युक्त साधनोंमेंसे कोई साधन किसी साधकके अनुकूल नहीं पड़ता हो तो उसे अपनी रुचिके अनुसार अपने इष्टका ध्यान करना चाहिये। अपनी रुचिके अनुसार अपने इष्टका ध्यान करनेसे मन स्थिर हो जाता है।

जो हमें श्रेष्ठ मान्य हों, उनसे हमारा काम चल सकता है।

इससे भी सरल बात है—उनके चरणोंकी धूलि भी यदि हम श्रद्धासे धारण करें तो हमारा कल्याण हो जाय। पर वे महापुरुष होने चाहिये और हमारी श्रद्धा होनी चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णने कौरवोंकी सभामें अपना प्रभाव जनाया परन्तु वहाँ मूढ़ोंका समूह था, उन्होंने उनकी बात भी नहीं मानी एवं तिरस्कार ही किया। भगवान्‌को बाँधनेका विचार किया। दुर्योधन, शकुनि, दुःशासन एवं कर्णकी चांडाल-चौकड़ीने एकान्तमें बैठकर भगवान्‌को जंजीरोंसे बाँधनेका विचार किया। भगवान्‌ने विराट्‌रूप धारण किया। जिनको भगवान्‌ने दिव्य दृष्टि दी, उनके सिवाय सब मोहित हो गये। भगवान्‌ने कहा भी है—

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥

(गीता ९। ११)

मेरे परमभावको न जाननेवाले मूढ़ लोग मनुष्यका शरीर धारण करनेवाले मुझ सम्पूर्ण भूतोंके महान् ईश्वरको तुच्छ समझते हैं अर्थात् अपनी योगमायासे संसारके उद्धारके लिये मनुष्यरूपमें विचरते हुए मुझ परमेश्वरको साधारण मनुष्य मानते हैं।

उत्तंकको भी भगवान्‌ने विराट्‌रूप दिखाया, वे भक्त थे, भगवान्‌का प्रभाव जान गये। दुर्योधनकी दृष्टिमें वह बाजीगरी थी। भगवान् स्वयं कहते हैं—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

(गीता ४। ९)

हे अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं—इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्वसे जान लेता है, वह

शरीरको त्यागकर फिर जन्मको प्राप्त नहीं होता, अपितु मुझे ही प्राप्त होता है।

हम मिल करके यह निश्चय कर लें, भगवान्का तत्त्व जान लें तो कल्याण कर सकते हैं। उद्धवजीने भगवान्से कहा—मुझे वृन्दावनमें लता-पत्ता आदि बना दें, मुझपर गोपियोंकी चरणधूलि पड़ जायगी तो मेरा कल्याण हो जायगा। वहाँका प्रेम देखकर उद्धवजीको इस बातका निश्चय हो गया था।

गौरांग महाप्रभु महापुरुष हुए हैं। श्रीरामकृष्ण परमहंस भी बड़े अच्छे पुरुष प्रतीत होते हैं। पुस्तकोंको देखनेसे पता लगता है। किसीके पास इत्र हो तो दूर-दूरतक सुगन्ध फैल जाती है। दीखता कुछ नहीं है, किन्तु नासिकाके द्वारा पता लगता है। ऐसे ही अन्तःकरणका भाव पवित्र हो जाय तो सब जगह साक्षात् भगवान् दीखने लगते हैं। वृक्ष, पशु सब जगह साक्षात् चिन्मय स्वरूप नारायण दीखते हैं। ऐसे ही श्रद्धालु पुरुषको महात्माकी प्रत्येक क्रिया, उनकी वाणी, उनसे स्पर्श की हुई प्रत्येक वस्तुमें प्रत्यक्ष मुक्ति दिखायी देती है। महापुरुषोंके नामोच्चारणसे भी आत्मा पवित्र हो जाती है।

गौरांग महाप्रभुका नाम-कीर्तनसे गौड़ीय सम्प्रदायके लोग अपना कल्याण मानते हैं। वे एक महापुरुष थे। राधारानीकी कृपासे हमारा कल्याण हो जायगा, फिर परमात्माकी कृपासे कल्याण हो जाय, इसमें तो शंका ही क्या है?

व्यवहार-सुधारकी बहुत महत्त्वपूर्ण बात बतायी जाती है—अमुक बात हमारे मनके विपरीत पड़ गयी, इसलिये काममें नहीं ला सके। संसार जो वास्तवमें मायामात्र है उसमें अनुकूलता-प्रतिकूलता ही क्या है? स्वप्नवत् दृष्टि होनी चाहिये। बाजीगर

जमूरेसे तमाशा कर रहा है, वह कहता है हाँ तो हाँ, कुछ भी कठिन नहीं मालूम होता। वह लीलाको समझ रहा है। इस सम्बन्धमें इन तीन बातोंका ध्यान रखना चाहिये—

१-आँख खुलनेके बाद स्वप्नवत्‌का-सा व्यवहार करना चाहिये।

२-सत्ता रहते हुए बाजीगरके जमूरेकी तरह व्यवहार करना चाहिये।

३-बिना मन हुए भी स्वामी मानकर उनकी आज्ञा माननी चाहिये।

एक-दो महीनों, दिनोंका काम नहीं है। उसे हर समय आनन्दका ठिकाना नहीं रहता और करनेमें समय नहीं लगता।

जो मतभेद मानकर, चित्तका दुःख मानकर करे, वह तो अपराधी है। भगवान्‌की कृपासे अपराध क्षमा हो जाता है। भगवत्प्राप्तिकी तो बात ही क्या है। एक व्यक्ति वेश्याको देखकर मन चंचल करता है, वह अपने मनमें चाहे जितना बड़ा बनता है, पर उस कालमें तो वह वेश्यासे भी गया-बीता है, तभी तो वेश्याकी खुशामद कर रहा है। किस चीजके लिये? मल-मूत्रकी थैलीके लिये, यदि वेश्या उसपर मोहित होती तो वह वेश्यासे अच्छा होता, पर वह वेश्यापर मोहित हो गया, उस समय तो वेश्या ही श्रेष्ठ हुई। इसी प्रकार महात्मासे हम किस चीजको लेकर, किन पदार्थोंको महत्त्व देकर, सत्य मानकर व्यवहार कर रहे हैं?

काम-दोषका निवारण

किसी भी प्रकारसे स्त्रियोंका संसर्ग न हो, स्त्रियोंका संसर्ग सब प्रकारसे हानिकर है। एकान्तमें मिलना उससे भी ज्यादा हानिकर है। स्त्रीका स्मरण, स्त्रियोंके विषयकी बातें, उनके चित्र, ये सभी हानिकर हैं। इनका जितना बचाव होगा उतना ही लाभ होगा। मनमें पड़ी हुई खराब वृत्तियाँ निमित्त पाकर जागृत हो जाती हैं। कामके जागृत होनेके निमित्तका नाश करे। स्त्रियोंके मिलनेपर उनके दर्शनसे विकार हो जाता है। नेत्रेन्द्रियको सावधान रखना चाहिये।

जब मनुष्य निकम्मा रहता है, तब व्यर्थ बातें याद करता है। अतः अपने-आपको काममें व्यस्त रखे, बिलकुल भी समय न मिले तो मानसिक पतन नहीं होगा। कुछ-न-कुछ भगवद्विषयक काम करता रहे। ये सब उपाय काम जाग्रत् होनेके पूर्वके हैं। अब प्राप्त होनेपर निवारणकी बात बतायी जाती है—स्वप्नदोष आदिके विषयमें तीन कारण प्रायः प्रधान रहते हैं—खट्टी चीज, ज्यादा मिर्च, गर्म चीज (जलता दूध), गरमागरम भोजन करनेसे वीर्य पतला होकर स्वप्नदोष हो जाता है, अतः इनसे बचाव करना चाहिये। तेल भी खराब चीज है। यह पदार्थोंकी बात हुई।

अब भगवत्प्राप्ति होनेकी बात बतलायी जाती है। भगवान्ने बताया है—

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति॥

(गीता १४। १९)

प्रवचन—दिनांक ८-८-१९४०, गोरखपुर।

जिस समय द्रष्टा तीनों गुणोंके अतिरिक्त अन्य किसीको कर्त्ता नहीं देखता और तीनों गुणोंसे अत्यन्त परे सच्चिदानन्दघनस्वरूप मुझ परमात्माको तत्त्वसे जानता है, उस समय वह मेरे स्वरूपको प्राप्त होता है।

जिस व्यक्तिको उपरोक्त शरीरसे बाहर होनेकी विद्या आती हो, इसके अनुसार शरीरसे बाहर निकलकर आकाशकी तरह सर्वत्र व्यापक होकर सबको कल्पनामात्र समझे, भाव—धारण-स्थितिसे किंचिन्मात्र भी संसारकी सत्ता न रहे। यह अनुभूत बात है। व्यक्ति मुर्दा-सा पड़ा रह जाता है, उसमें कोई विकार नहीं ठहरते। पहले साधारण बात बतलायी जाती है, बादमें विशेष होगी—

१. स्त्रीके संगका परिणाम जीते-जी महान् दुःखदायी है।

२. मरनेपर परलोकमें घोर नरक देनेवाला है।

३. मैलेकी थैली है, इसमें विष्टा-मूत्रके सिवाय कुछ नहीं है।

४. यदि इन सब बातोंको मन उड़ा दे तो इस बुरे कामसे होनेवाली लोकनिन्दाका भय दिखला दे।

दूसरी बात—वैराग्यवान् विरक्त पुरुषोंका स्मरण करके उनकी वृत्तियोंको याद करे, उनकी नकल करे एवं उनके जैसी वृत्तियाँ बनावे।

सबसे बलवान् बात यह है कि रोकर, हृदयसे दुःखी होकर, आर्तकी तरह हे नाथ! हे नाथ! हे प्रभु! हे दीनबन्धु! आपके राज्यमें आपके रहते मेरी यह दशा क्यों हो रही है। द्रौपदी आदिकी तरह आतुर होकर, शरण होकर पुकारे। एक बार पुकारते ही विकार शान्त हो जायगा।

मनको समझाये कि इसमें कोई शोभा नहीं है, मूर्खता ही है। पान चबाकर थूके हुए पीबको लालकी भाँति समझनेकी-सी

बुद्धि है। अपने मनसे उसको छीले तो उसमें खूनकी धारा बहने लग जाती है। मन-ही-मन उसे काटकर देखे। यानि घृणाकी चीजें मांस, मिट्टी, मवाद, खून—उन सब चीजोंको देखे। घृणाबुद्धिका विस्तार करे। सारे शरीरमें गन्दी चीजें निकलेंगी, कोई भी सुन्दर वस्तु नहीं है।

सुखबुद्धि नष्ट करनेके लिये दुःखबुद्धि करे।

रमणीकता नष्ट करनेके लिये घृणाबुद्धि करे।

सत्ता नष्ट करनेके लिये स्वप्नबुद्धि करे।

अपनी स्त्रीसे ऋतुकालमें महीनेमें एक बार समागम करे, यदि रहा न जाय तो दो बार करे, इससे अधिक न करे। अपनी स्त्रीसे दिनमें, रजस्वला अवस्थामें एवं गर्भावस्थामें समागम करना परस्त्रीसे समागम करनेके समान ही पाप है। परस्त्रीके समान तो नहीं है, परन्तु पाप है। एकादशी, अमावस्या, पूर्णिमा आदि तिथियाँ, पर्वकाल—ग्रहण, व्यतिपात आदिमें संसर्ग करना दोष है। मनुष्यमें किसी अंशमें यह दोष घट जाय तो पश्चात्ताप करना चाहिये, एकान्तमें बैठकर रोना चाहिये एवं भविष्यके लिये खूब संयम करना चाहिये।

लोभका विवेचन

स्त्रीविषयक काम जिस प्रकार मनुष्यको खींचता है, उससे भी अधिक लोभ मनुष्यको अपनी ओर खींचता है। यह बात कही जाय तो भी अत्युक्ति नहीं है। लोभ दो तरहका है—न्याययुक्त लोभ एवं अनुचित लोभ।

उचित लोभ भी आगे जाकर अनुचित हो जाय तो वह भी नरकमें ले जाता है। न्याययुक्त लोभ—एक व्यक्ति धनकी वृद्धि तो चाहता है पर अन्यायसे नहीं, किन्तु उसकी वृत्ति लोभकी होनेके कारण कहीं-न-कहीं पाप करवा देती है।

अनुचित लोभके दो भेद हैं—अन्याययुक्त उपार्जन एवं न्याययुक्त स्थलमें खर्चका संकोच करना, कंजूसी करना।

उदाहरण—माँ-बाप बीमार हैं, उनके जीनेसे हमारा क्या लाभ, हम खर्च न करें तो यह पाप है।

न्याययुक्त स्थलपर खर्च न करना पाप है।

दूसरेका हक किसी प्रकार भी हरण करना पाप है।

दूसरेका उचित हक न देना भी पाप है।

शास्त्रके कानून, लोकके कानून, सरकारके कानून आदिके विपरीत अनुचित लोभ करना पाप है।

विधवाका हक उसको न देना पाप है।

सरकारी नियमोंके अनुसार आयकर, चुंगी, समाजके नियमोंके अनुसार किसीका हक न देना पाप है। पिता मर जाय, श्राद्ध

प्रवचन—दिनांक ९-८-१९४०, गोरखपुर

न करे, सपिंडी आदि क्रिया-कर्म लोभवश न करे, यह पाप है। राज्यांश आदि देनेकी बात—लोकमर्यादा, शास्त्रमर्यादा एवं राज्यमर्यादा—ये तीन मर्यादा हैं। शास्त्रके विरुद्ध लोकमर्यादा हो तो शास्त्रमर्यादाकी प्रधानता है।

कामकी गड़बड़ीसे वाणी आदिके स्थानपर प्रभाव पड़ता है। लोभका प्रभाव हृदयपर होता है। क्रोधका प्रभाव मस्तिष्कपर अधिक होता है। दोनों प्रकारके लोभमें अन्यायसे धनोपार्जन होता है।

अपनी वास्तविक लेनदारीको प्राप्त करनेमें कठिनता होनेपर व्यक्तिकी सात्त्विक वृत्ति कहती है, हम तो अदालतमें जाकर झूठ बोलना नहीं चाहते। क्या फर्क पड़ता है, पापके काममें क्यों पड़ें। राजसी वृत्ति कहती है अपना तो सच्चा पावना है, किसी प्रकार भी लेना चाहिये। मनमें गड़बड़ी होती है। संघर्षण पैदा होकर दुःखी हो जाता है। ऐसे स्थलमें अच्छा संग मिल जाता है तब तो ठीक है और लोभी व्यक्तिका संग मिल जाता है तो पापमें फँस जाता है।

अन्यायसे आते हुए धनको भी रोकना बड़ा कठिन हो जाता है। यदि घरमें कोई बड़ा उसे रोक देता है तो प्राण जानेका-सा कष्ट प्रतीत होता है। नया अन्याय रोकना, इतना कठिन नहीं है। होते हुए अन्यायको बन्द करना उससे अधिक कठिन है।

मैं जब राजस्थानसे बाँकुड़ा आया, तब पिताजीने मुझे एकान्तमें बुलाकर समझाया कि अपने चाहे कुछ भी हो जाय, असत्यका धन, अन्यायकी कमाई कभी न हो जाय। इस काममें कभी न दबना।

विशेष महत्त्वकी अनमोल बातें

समय दिन-दिन बीता जा रहा है। दिन नीके बीते जाते हैं।

एक साधक—समयको ही उठा दीजिये।

उत्तर—समय उठाना अपने हाथकी बात नहीं है। असली पण्डित हो तब बेड़ा पार है।

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

(गीता ५। १८)

वे ज्ञानीजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मणमें तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डालमें भी समदर्शी ही होते हैं।

गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥

(गीता २। ११)

जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिये भी पण्डितजन शोक नहीं करते।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥

(गीता ४। १९)

जिसके सम्पूर्ण शास्त्रसम्मत कर्म बिना कामना और संकल्पके होते हैं तथा जिसके समस्त कर्म ज्ञानरूप अग्निके द्वारा भस्म हो गये हैं, उस महापुरुषको ज्ञानीजन भी पण्डित कहते हैं।

असली पण्डित तो वही है जिसमें उपरोक्त लक्षण मिलते हैं।

प्रवचन—दिनांक १०-८-१९४०, साहबगंज, गोरखपुर।

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेमका पढ़ै सो पंडित होय॥

कथा सुनी हुई है, तुलाधार वैश्यकी तरह एक वैश्य था। बड़ा सत्यवादी था, न्याययुक्त व्यवहार था। जिस राजाके राज्यमें रहता था वहाँ वर्षा नहीं हुई, कई वर्ष हो गये। सारी प्रजा **'त्राहि माम्, त्राहि माम्'** करने लगी। राजा धर्मात्मा था, कहा मैं क्या करूँ? उस राज्यमें वैश्यके तत्त्वको जाननेवाले कई थे। उनमेंसे एकने राजासे कहा—वह वैश्य यदि वर्षाके लिये प्रार्थना कर दे तो वर्षा अवश्य हो जायगी। सबने इस बातको स्वीकार किया। राजाने कहा—अपने उनसे काम लेना है, अतः हमें उनके पास जाना चाहिये। राजा हाथीके हौदपर बैठकर गये। वैश्य जहाँ खाद्य पदार्थ बेचा करता था, वहाँ पहुँचे। भीड़ हुई तो उसने देखा, क्या बात है? वह भी खड़ा हुआ, राजा उसकी दुकानपर आये। उसने कहा—महाराज मेरे पास आपके योग्य कोई आसन नहीं है, कैसे स्वागत करूँ, एक बोरेपर बैठा दिया। राजाने कहा—मुझे गद्दे-तकियेपर वह आनन्द नहीं आता जो आज आ रहा है। वैश्यने राजासे कहा कि आप मुझे बुला लेते, मैं तो प्रजा हूँ। राजाने कहा—मैं याचना करने आया हूँ। वैश्यने कहा—आप याचना करें, मेरे पास ऐसी क्या चीज है। राजाने कहा—आपके पास ही वह चीज है। वैश्यने कहा—आज्ञा करें। राजाने कहा—अकाल पड़ रहा है, आप देख रहे हैं। वैश्यने कहा—यह तो जीवोंका भोग है। राजाने कहा—ठीक है भोग तो है ही, किन्तु बिना वर्षा प्रजा बहुत कष्ट पा रही है, यह कष्ट दूर करना आपके वशमें है।

वैश्यने कहा—मेरे वशकी बात नहीं है।

राजाने कहा—आप प्रभुसे प्रार्थना कर दें।

वैश्यने कहा—आप भूपति हैं, आप प्रार्थना करें। आप बड़े हैं, मैं तो आपका तुच्छ सेवक हूँ।

राजाने कहा—मैं यहीं बड़ा हूँ प्रभुके दरबारमें नहीं। उनके दरबारमें आप ही बड़े हैं इसलिये वर्षाके लिये प्रार्थना कर दें।

वैश्य—मेरे वशकी बात नहीं है।

राजा—आपको वर्षा तो करवानी ही होगी, चाहे आज करवायें चाहे कल। वर्षा नहीं होगी तो प्रजा मर जायगी, फिर राजा कैसा। फिर संसारमें क्या रहना, आपकी इच्छा हो तब बरसाइयेगा, मैं यहीं बैठता हूँ।

वैश्य—आपको कष्ट होगा, यहाँ आपके योग्य स्थान नहीं है।

राजा—कष्ट क्या है? मेरे लिये यह आनन्ददायक है।

वैश्यने देखा कि ये पिण्ड नहीं छोड़ेंगे। उसने कहा—आपने यह धारणा कैसे की?

राजा—सब प्रजाकी ही धारणा है। मैं तो उनकी ओरसे प्रार्थना करता हूँ। जब राजाने ज्यादा कहा तो वैश्यने तराजू हाथमें लिया और कहा—हे तराजू! यदि मैंने कभी कम नहीं तौला है, अधिक नहीं लिया है तो सब प्रजाके लिये वर्षा हो। बस यह कहते ही उसी समय खूब जोरसे वर्षा प्रारम्भ हो गयी। राजा सूखेमें आये थे, भीगते-भीगते गये। यह कथा क्यों याद आयी, घनश्यामने कहा था—

एक घड़ीमें सब जग मेले सावलिया गिरधारी।

भगवान् इच्छा करें तो सब संसारका एक क्षणमें उद्धार कर दें। मामूली बात है।

प्रभुकी प्राप्ति क्षणमें ही होती है प्राप्त तो हैं ही, केवल जानना है। जाननेके साथ उसी क्षण प्राप्ति है। ध्रुव, प्रह्लादके लिये

जो कानून था वही हमारे लिये है। उनकी तरह हमारेमें श्रद्धा नहीं है। यदि श्रद्धा हो तो उसी क्षण प्रकट हो जायँ।

एक बात याद आ गयी। कोई विरक्त पुरुष एक गृहस्थके घर चले गये। नारायण, हरि पुकार लगायी। गृहस्थ आकर चरणोंमें पड़कर रोने लगा, कहा—मैं दीन हूँ, उधार मिलता तो भी लाकर भिक्षा देता। परिवारमें सब भूखे हैं, उधार मिलता नहीं है, भोजन बिना जी नहीं सकते। साधु घरमें गये, वहाँ देखा एक सिल-लोढ़ा पड़ा है। लोढ़ा लेकर कहा—यह क्या है? गृहस्थने कहा लोढ़ा है। साधुने कहा—यह लोढ़ा नहीं है पारस है। महाराज प्रत्यक्ष लोढ़ा है कैसे मानें? साधुने कहा लोहा है क्या? लोहा लाया छुआया तो सोना हो गया। साधुने कहा—तुम चाहो तो सबको धनी बना सकते हो, अब तुम मालामाल हो गये। अब तुम सब संसारको धनी बनाओ। यह दृष्टान्त है। दृष्टान्तको यों घटाना है—उसकी आकृति पहले भी वही दीखती थी, अब भी वही दीखती है। पहले ठोकरोंमें पड़ा था, अब वह प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हो गया। उसका वजन, आकृति सब वही है, किन्तु पारस था उसको पत्थर मान रखा था। अब एक क्षणमें ही चिन्मय मान लिया, सब शंका दूर हो गयी। एक क्षण पहले पत्थर था, एक क्षण बाद पारस हो गया। इसी प्रकार यह संसार पत्थररूप है। वास्तवमें यह पारस है, अर्थात् परमात्माका स्वरूप है। शास्त्र कहता है—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(गीता ७। १९)

बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त पुरुष, सब

कुछ वासुदेव ही है—इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।

भगवान् कहते हैं—सारा संसार मेरा ही स्वरूप है। जो यह जान जाता है वही यथार्थ महात्मा है। महात्माकी दृष्टि ही यथार्थ दृष्टि है। हमको यह संसार पत्थर दीख रहा है, वास्तवमें है परमात्माका स्वरूप। कोई महात्मा आकर कह दे तो भी विश्वास नहीं करते। महात्माने जिस तरह लोहा मँगाकर दिखा दिया, इसी प्रकार कोई महापुरुष प्रत्यक्ष दिखा दें तो माननेको तैयार हैं। पहले ऐसे महात्मा हुए हैं, उन्होंने सिरपर हाथ रखा, हृदयपर हाथ रखा परमात्मा दीखने लगे। इसी तरह कोई करे तो हम भी मानने लग जायँ। आवश्यकता है ऐसे पुरुषकी, दरिद्र तो हम सब हैं ही। कोई महापुरुष हमको भी आकर प्राप्त हो जाय तो एक क्षणमें सब काम हो जाय।

कभी-कभी मेरे मनमें भी यह बात आ जाती है कि लोग बहुत दुःखी हैं। मेरे पास पारस नहीं है, नहीं तो सबको बाँट देता।

महाभारतकी कथा आती है—एक ब्राह्मण शिलोञ्छवृत्तिसे निर्वाह करते थे। एक बार उन्हें कई दिनोंतक भूखे रहनेके बाद अन्न मिला। वह भोजन करनेवाले थे कि एक अतिथि आ गये। क्रमशः उन्होंने पूरे परिवारका भाग खा लिया। वहाँ धरतीपर अन्नके कुछ कण गिरे हुए थे, उनमें लोटनेसे एक नेवलेका आधा शरीर सोनेका हो गया। महाराज युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञकी काफी प्रशंसा सुनकर वह नेवला वहाँ इस इच्छासे गया कि मेरा बाकी शरीर भी सोनेका हो जाय; किन्तु उसे निराशा मिली। वहाँ लोग महाराज युधिष्ठिरसे यज्ञकी प्रशंसा कर रहे थे, तब नेवलेने कहा कि यह यज्ञ तो उस शिलोञ्छवृत्तिवाले ब्राह्मणके पावभर

सत्तूके दानके बराबर भी नहीं है। इस कथासे हमें यह उपदेश लेना चाहिये, चाहे प्राण चले जायँ अन्यायसे धन उपार्जन नहीं करना है। उस जीवनसे मर जाना अच्छा है। अन्यायसे जीविका नहीं चलानी चाहिये। दूसरी शिक्षा यह लेनी चाहिये कि कोई भी अभ्यागत—अतिथि आ जाय, उसे देकर ही भोजन करना चाहिये। तीसरी बात स्त्रियोंको यह शिक्षा लेनी चाहिये कि वह पतिके हाथसे ही अपने हकको दे, अपने हाथसे नहीं। इस प्रकार जो स्त्री पातिव्रत धर्मका पालन करती है वह उच्चकोटिकी है। पुत्र माता-पिताके रहते स्वतन्त्र दान नहीं करता, पिताके द्वारा ही करवाता है—यह शिष्टाचार है।

एक शिक्षा यह लेनी चाहिये कि किसीके द्वारा की गयी बड़ाई घातक है। राजा युधिष्ठिरके यज्ञकी बहुत प्रशंसा हुई, इसलिये भगवान्‌ने उस नेवलेको भेजकर उसकी प्रशंसा घटा दी।

परमात्माकी प्राप्ति एक क्षणमें हो सकती है। कब होती है? जब मनमें श्रद्धा-प्रेम हो। भगवान् रामचन्द्रजी अवध जा रहे हैं, बन्दरोंको बता रहे हैं यह सरयू नदी है, इसमें स्नान करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता। यह अवधपुरी है, यद्यपि लोग वैकुण्ठकी प्रशंसा करते हैं, परन्तु मुझे वैकुण्ठवासी इतने प्रिय नहीं हैं जितना अवध।

जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। बेद पुरान बिदित जगु जाना॥
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ॥

यही रहस्य है। अवधके लोगोंमें जो श्रद्धा-प्रेम है, वह वैकुण्ठवासियोंमें नहीं है। सारे लोग मेरे दर्शनोंके लिये उत्सुक हो रहे हैं। भगवान् क्षणमात्रमें सबसे मिले। भगवान् शंकर कहते हैं, मैं सब देख रहा था—

अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहि कृपाला॥
छन महिं सबहि मिले भगवाना। उमा मरम यह काहुँ न जाना॥

जिसका जैसा भाव था, उससे भगवान् उसके अनुसार मिले। हमलोगोंमें भी ऐसा प्रेम हो जाय तो एक क्षणमें भगवान् मिल जायँ। यह भगवान्‌की लीला है, वे एक क्षणमें मिल सकते हैं। शंकर स्वामीकी माँने आज्ञा दी थी कि तुम्हारे सामने मेरी मृत्यु हो। शंकर स्वामीने प्रतिज्ञा की, आप मुझे याद कर लेना मैं उपस्थित हो जाऊँगा। जिस समय माताको कष्ट हुआ, पुकारा बेटा शंकर! शंकराचार्यजी उसी समय वहाँ प्रकट हो गये। इस प्रकार योगी महात्मा भी सब जगह प्रकट हो सकते हैं। भगवान् तो सब जगह हैं ही। यह जो संसार हमें दीख रहा है, यह साक्षात् परमात्मा है। श्रुति, भागवत, रामायण—सब यही बात कह रहे हैं। इस प्रकार जिन्हें सब जगह भगवान्‌के दर्शन होते हैं वे ही धन्य हैं। हमारे ऊपर पर्दा पड़ा हुआ है, जब पर्दा उठेगा तब एक क्षणमें उठ जायगा, भगवान् और महापुरुषोंकी दयासे उठेगा। जिस समय भगवान् मिलते हैं वह क्षण एक ही है। मेरे लिये तो जैसे भगवान् हैं वैसे ही मेरे मित्र हैं, भगवान्‌के ऐश्वर्य अधिक है और क्या अन्तर है? हमारे प्रेमी तो दोनों ही हैं। इस समय तो आपको जो बात अच्छी लगे वही करनी है। बड़े आदमियोंकी तो सभी खुशामद करते हैं।

भगवान्‌के यहाँ तो आफत है, वह बड़ा आदमी है छोटेके पास कैसे आये, मेरी तो ऐसी ही मित्रता है। एक सुनी हुई बात है—

एक बार भगवान् एवं अर्जुन दोनों बैठे हुए थे। अर्जुनने कहा—मैंने ऐसा कौन-सा सुकृत किया था कि आप मेरी

प्रसन्नताके अनुसार कार्य करते हैं, आपसे सम्बन्ध हुआ, आप मेरे सारथी बने, मेरी प्रसन्नता, मेरी इच्छाके अनुसार कार्य करते हैं। इससे बढ़कर कोई सुकृत हो सकता है क्या? मेरेसे भी बढ़कर कोई हो सकता है क्या? भगवान्ने कहा—ऐसी कोई बात नहीं है। संसारमें सब प्रकारके लोग हैं। भगवान्ने देखा इसे अभिमान हो गया है, उनका नाम गर्वहारी है ही। दो-चार दिन बाद घोर जंगलमें अर्जुनको ले गये, वहाँ बड़ी भारी आँधी आयी। इतना अँधेरा हो गया कि हाथको हाथ नहीं सूझता था। वृक्षके नीचे बैठ गये। ठंडके दिन थे, वर्षा प्रारम्भ हो गयी, ओले गिरने लगे, दोनों काँपने लगे। वृक्षके ऊपर एक कबूतर एवं कबूतरी रहते थे। उन्होंने कहा कि ये अतिथि आ गये हैं, इनका दुःख मिटाना चाहिये। कबूतर कहींसे एक जलती हुई लकड़ी ले आया, कबूतरीने ऊपरसे घोंसला गिरा दिया। कबूतरने उसमें लकड़ी लगा दी, आग जलने लगी। भगवान्ने कहा—देख अर्जुन, ये पक्षी हैं, घर फूँककर सुकृत कर रहे हैं। तू इस तरह कर सकता है क्या? अर्जुनने कहा—महाराज आप चाहे जो कुछ करें। मयूरध्वजकी कथा प्रसिद्ध ही है।

मयूरध्वजने वरदान माँग लिया कि अब भविष्यमें ऐसी कड़ी परीक्षा मत लेना, क्योंकि कलियुग आ रहा है। उसके बाद ऐसी कड़ी परीक्षा भगवान्ने नहीं ली। परीक्षा उसीकी लें जो यह समझे कि मैं उत्तीर्ण हो जाऊँगा। पहले ही जो **'त्राहि माम्, त्राहि माम्'** करे, उसके पास कौन जाये।

भगवान् दयालु हैं। वे अपने भक्तोंमें दोष पैदा होने ही नहीं देते हैं। कहीं हो जाता है तो भगवान् देखते हैं यह उपाधि हो गयी, इसे हटाओ। रायबहादुर, सर यह भी उपाधि है। उपाधि

व्याधि हो रही है। नयी व्याधि लगानी ही नहीं है।

प्रश्न—ऐसा उपाय बताइये जिससे भगवान् शीघ्र मिलें।

उत्तर—यदि है शौक मिलनेका हरिका भजन करो प्यारे।

भजन किये जाओ, आनन्द मानो, यदि शीघ्र मिलनेकी इच्छा है तो जल्दी-जल्दी भजन करो। विलम्बसे मिलना है तो धीरे-धीरे करो।

प्रश्न—मिलना जल्दी है, किन्तु हम चलते नहीं, हवाई जहाज चाहिये।

उत्तर—ऐसे विमानका दाम लाओ। विमान तो तैयार है जो क्षणमें पहुँचता है। ***छन महिं सकल मिले भगवाना।*** श्रद्धा-भक्ति ही उसका मूल्य है, वही धन है। धन नहीं है तो फिर पैदल चलो। शीघ्रता-आवश्यकता हो तो जल्दी चलो। रास्ता तो काटना होगा, चाहे सवारीसे, चाहे पैदल। पैसा हो तो सवारीपर चलो। श्रद्धा-प्रेम ही सवारी है, जितनी अधिक श्रद्धा प्रेम है उतनी ही अधिक तेज सवारी है। श्रद्धा-प्रेम हो तो बेड़ा पार है। फिर भगवान्के मिलनेमें कोई विलम्ब नहीं है। एक क्षणमें मिल जाते हैं। श्रद्धा-प्रेम नहीं है, थोड़ा है तो थोड़े मूल्यकी सवारी कर लो। श्रद्धाका स्वरूप यह है कि कूआँ तेरी माँ मरी, तो कूएँसे प्रतिध्वनि आती है मरी। यही श्रद्धाका स्वरूप है। जैसे कठपुतली सूत्रधारके शरण होती है इसी प्रकार भगवान्की शरण हो जाय।

एक क्षण भी भगवान्का वियोग नहीं सह सके, यह प्रेमका नमूना है। भगवद्वियोगसे परम व्याकुलता होती है। **'तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति'** परम प्रेमका स्वरूप है ही नहीं, क्योंकि वह अलौकिक है, गूँगेका स्वाद है। प्रेमी प्रेमसे हट नहीं सकता। मछली जलके वियोगसे जी नहीं सकती। मछली दो-चार क्षण

जी भी सकती है, पर प्रेमी प्रेमको नहीं छोड़ सकता। भगवान्‌के लिये मछलीकी तरह तड़पने लग जाय। जल तो जड़ है वह स्वयं मछलीपर उछलकर नहीं गिर सकता, किन्तु भगवान् तो उछलकर आ पड़ेंगे। जब भगवान्‌के नाम-रूपका विरह नहीं सह सकेगा, उस समय भगवान् बिना बुलाये आयेंगे।

इसी तरह श्रद्धाकी बात है। द्रोणाचार्यमें भील एकलव्यकी श्रद्धा थी। आरुणीकी अपने गुरुमें श्रद्धा थी। जाबालाके पुत्र सत्यकामकी अपने गुरुमें श्रद्धा थी। श्रद्धा ऐसी होनी चाहिये कि श्रद्धेयके संकेतके अनुसार नाचे। कठपुतली तो नचानेसे नाचती है, वह संकेतमात्रसे नाचे, प्रसन्न हो, मस्तीसे आज्ञापालन करे। यदि भगवान्‌की आज्ञापालनका मौका मिल गया तो कृतकृत्य हो गया। छोटीसे छोटी आज्ञा हो, आज्ञापालनकी तत्परता श्रद्धाकी पराकाष्ठा है। प्रभुके नाम, ध्यानका वियोग ही मृत्यु है। काँटा बिछा दो, विष पिला दो, पर मेरे प्यारे प्रेमीसे वियोग मत कराओ। जिस प्रेममें वियोग असह्य है, वह प्रेमका स्वरूप है।

रामचन्द्रजीकी महाराज दशरथमें श्रद्धा है। हर्षके साथ आज्ञापालन-हेतु चौदह वर्षके लिये वनमें जा रहे हैं। पितापर दोषदृष्टिकी कल्पना ही नहीं है। श्रद्धाका नमूना भगवान् श्रीराम हैं, प्रेमका नमूना राजा दशरथ हैं, जो प्रभुके वियोगमें संसारमें ही नहीं रहे। ये दोनों एक जगह देखना हो तो भरतजीमें देखें।

कितनी ऊँचे दर्जेकी श्रद्धा है, भगवान्‌की आज्ञा मानकर लौट आते हैं। प्रेम ऐसा है कि एक-एक क्षण भगवान्‌के वियोगमें बीत रहा है, नेत्रोंसे जल बह रहा है। चरणपादुकाको सब बात सुना देते हैं। भगवान्‌ने कहा है—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥

(गीता ६। ३०-३१)

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।

जो पुरुष एकीभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०। ९-१०)

निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर सन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं।

उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।

यह प्रेमीका लक्षण है। जिनका मेरेमें चित्त है वे मच्चित्ता हैं, जिनके प्राण मेरे लिये ही हैं वे '**मद्गतप्राणाः**' हैं, ऐसी क्रिया जिसमें है वह मेरा यन्त्र है। उनको मैं बुद्धियोग देता हूँ। प्रभुसे

प्रेम होना चाहिये। उस प्रेमके प्यारेसे नेह लगाओ, खूब भक्ति करो, फिर आनन्द-ही-आनन्द है।

भक्तिका बाग लगा ले। भगवान्‌की भक्ति ही बाग है। प्राप्ति, दर्शन यह सब मेवा है। उस बागमें अनगिनत मेवा पैदा होगा। यह लौकिक बगीचा है, वह भक्तिका बगीचा है। भक्तिरूपी वृक्षका फल भगवान् हैं। कोई कहे मैं ऐसे गाँवमें गया जहाँ भगवान् वृक्षमें लगे हैं। वृक्षका नाम प्रेमभक्ति है। उस वृक्षकी पहचान क्या है? वह हर समय झरता रहता है। हर समय झरना क्या है? नेत्रोंसे जल-ही-जल झरे, वह झरना है, रोमाञ्च हो जाय। नेत्रोंसे जल झरे यह प्रेमभक्ति है एवं श्रद्धा बड़े मार्केकी है। दोमें एक ले लो। कुछ भी नहीं हो तो पैदलका मार्ग है, किसी तरह भी भजन करो। उससे भी प्राप्ति होगी, किन्तु विलम्ब होगा, तुलसीदासजीने कहा है—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

भगवान्‌का भजन करनेसे दसों दिशाओंमें आनन्द है। श्रद्धा हो चाहे न हो, जोरसे भजन करो। श्रद्धा-प्रेम हो, फिर तो बात ही क्या है?

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥

(गीता ७। १७)

उनमें नित्य मुझमें एकीभावसे स्थित अनन्य प्रेमभक्तिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है, क्योंकि मुझको तत्त्वसे जाननेवाले ज्ञानीको मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है।

भगवान्‌के एक प्रेमका ही नाता है *मानउँ एक भगति कर नाता।* भगवान् कह रहे हैं कि प्रेमके लिये मैं सब कुछ त्याग सकता हूँ, लक्ष्मीको त्याग सकता हूँ, वैकुण्ठको त्याग सकता हूँ। यही

बात भगवान्‌के भक्तोंकी है, उनके लिये जो कुछ है प्रेम ही है। धनसे मिलता तो प्रेम लाकर धर देते। वह तो हृदयसे पैदा होता है। उसका द्वार नेत्र है, उससे पता चलता है—

आवत ही हरखे नहीं नैनन नहीं सनेह।

यह नेत्रोंकी बात है। हृदयकी बात यह है—

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

(गीता ९। २९)

परन्तु जो भक्त मुझको प्रेमसे भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष हूँ।

प्रेमसे भगवान्‌की पूजा करे। भगवान् प्रेमसे आयेंगे। प्रेमसे सब कुछ हो सकता है। अनहोनी हो सकती है। कोई ऐसी बात नहीं है जो प्रेमसे नहीं हो सकती।

कोई प्रेमी खूब प्रेमसे भोग लगावे। प्रभुका आवाहन करे, भगवान् आकर सबके सामने खा लें, सब लोग मुग्ध हो जायँ। भगवान् अभी आ जायँ एवं भोजन करें तो कितना आनन्द हो। आ जायँ तो चरण पकड़ ले, ज्यादा धूम-धाम करें तो एक खूँटेमें बाँध दे; क्योंकि भागेंगे तो चरणोंसे ही। भागेंगे कहाँ, चरण तो बँधा पड़ा है। बाँधनेकी रस्सी चाहिये, रस्सी है श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, तिहरी रस्सी नहीं टूटती। तिहरी रस्सीसे बाँधकर कह दे, जा या हृदयमें बाँधो। यह ठाँव है, हृदयमें बाँध दे, स्थिर बुद्धिका खूँटा दे। कैसे बाँधे? जैसे सूरदासजीने बाँधा था—

बाँह छुड़ाये जात हो निबल जानके मोहि।
हिरदेसे जब जाहुगे पुरुष बदौंगो तोहि॥

ऐसा हो तो आनन्द आ जाय, भगवान् आ जायँ, बिजली-सी चमक जाय, सब आनन्दमें मुग्ध हो जायँ।

एक साधक—दर्शन कराइये।

उत्तर—मोर खूब नाचता है, किन्तु पैरोंकी ओर देखता है तो रोता है। क्या बतायें बड़ी कठिनाई है।

एक साधक—कलियुगका जमाना है, डोर ढीली करें।

उत्तर—आप सहारा लगायें, सहायता करें, एकान्तमें सब भगवान्‌से प्रार्थना करें कि वे दर्शन करानेवालेको दर्शन दे दें, यदि भगवान् आपकी प्रार्थना सुन लेंगे तो मैं आपको दर्शन करा दूँगा, आपके चरणोंका ही प्रसाद है। बचपनमें एक कहानी सुना करते थे कि आपके ही चरणोंका प्रसाद है।

एक महन्त था, उनके बहुत-से चेले थे, टोली थी, साथमें पूरी भीड़ चलती। महन्तजी बिछाये कपड़ेपर चलते थे, सोनेकी खड़ाऊँ पहनते थे। खूब धन आता था। बहुत लोग दर्शन करते थे एवं भोजनके लिये कहते। एक दिन एक ठगसे भेंट हुई, उसने कहा कि कल हमारा घर पवित्र करें। महन्तने स्वीकार कर लिया। उस ठगने एक बढ़िया मकान भाड़ेपर लिया, खूब तैयारी की। किसीको पैसा नहीं दिया। महाराजको लाया, उन्होंने खड़ाऊँ खोल दी। ठगने कहा—खड़ाऊँ सँभाल कर रखो, जोखिमकी चीज है। उसके आदमियोंने उस खड़ाऊँको बेचकर सबका मकान-भाड़ा आदि चुका दिया।

घेवर, बर्फी आदि खूब जिमाया। महन्तने कहा—खूब बढ़िया भोजन है, ठगने कहा—आपके ही चरणोंका प्रसाद है। खूब आदर किया—सुलफा, गाँजा पिलाया। बड़े घर छापा मारना अच्छा है, जमात-की-जमात ठगो। भगवान् महन्त हैं, बड़े घर डाका डालो। भगवान् तो महन्तकी तरह ही ठगाते हैं, कोई ठगनेवाला चाहिये। भक्तिमें, प्रेममें भगवान् एकदम मुग्ध हो जाते हैं, फिर पाई-पाई ठग लो, उस महन्तकी खड़ाऊँ ठगी थी, इनका सर्वस्व ठग लो। भरतजीने खड़ाऊँ ठगी थी, राज्य ठगा। अपने

भी भरतजीकी तरह ठग लो। भगवान्‌को तो ठग-ही-ठग मिले। ठगको ठग ही मिलते हैं। भगवान् दुनियाको ठगते हैं अपने भगवान्‌को ठगें। बात यह है कि दोनों ठगें तो ठगायी किस तरह हो। भगवान् आपको ठगना चाहें आप भगवान्‌को ठगना चाहें। मुझे बीचमें खड़ा कर दिया। भगवान्‌को कहते हैं कि आप दर्शन दे दें, हम बादमें भजन करेंगे, यह भगवान् स्वीकार नहीं करते। आप सर्वस्व अर्पण कर दें, वे दर्शन देंगे। आप कहते हैं पहले दर्शन कराओ। सौदा कैसे पटे? शक्तिशालीकी तो जीत सदा ही होती है, हम ही पहले ठगायें।

एक पंडेका नौकर था। वह यात्रियोंको लाता था। उसकी मजदूरी नियत थी कि इतना पैसा मिलेगा। जगह पहाड़पर थी। यात्री कहता मन्दिर कितनी दूरपर है! वह कहता बस थोड़ी दूर है। और आगे जानेपर पूछता तो नौकर कहता पासमें ही है। वे पूछते कितनी दूर है? कहता पासमें ही है। चलते जाते फिर पूछते तो पासमें ही बताता। यात्रियोंने कहा—तू तेरा पैसा ले ले, बहुत दूर आ गये। नौकर कहता अब तो थोड़ी ही दूर है, यात्री लोग थक गये, हैरान हो गये। यात्रियोंने कहा—यहीं लाकर दर्शन करा दो। नौकरने कहा—देवता उठकर आयेंगे क्या?

यही झगड़ा हमलोगोंमें हो रहा है। मैं कहता हूँ चलो-चलो इस झगड़ेमें मेरी दलाली मत खोओ। आप तो तैयार हैं कि अपना पैसा लो, हमारा पिण्ड छोड़ो। मैं पिण्ड छोड़ता नहीं हूँ। हमलोग गिरनार गये थे। मैं तो ऐसे ही चलाता हूँ कि निकट है। पहले ही कह दें कि सात हजार सीढ़ी है तो सब नहीं जायेंगे। वहाँ भी कई आदमी नहीं गये, कुछ बहुत दुःख पाते गये, रोते-रोते दर्शन तो कर आये। अपना रास्ता वहाँसे अच्छा है। अपने तो सीढ़ी चढ़ते ही रहो।

अब एक बात वैराग्यकी होनी चाहिये। खूब वैराग्य करे, सारे ऐश-आरामको तिलांजलि दे दे। आनन्दसे विचरे—

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(गीता २। ७१)

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर ममतारहित, अहंकाररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है अर्थात् वह शान्तिको प्राप्त है।

सारी कामनाओंको छोड़ दे। कामना, तृष्णा, स्पृहा एवं ममताको तिलांजलि दे दे।

मेरे दादाजी कथा कहते थे। चूरूमें अमीनाथजी एवं मिश्रीनाथजी बड़े विरक्त साधु थे। रात-दिन भजन-ध्यान करते। रूखा-सूखा खाते थे। यह पहले ही कह देते थे कि घी-खाँडवाला भोजन हमें मत देना। मैंने पूछा बाबाजी कभी आपका मन घी खानेका होता है कि नहीं, उन्होंने कहा— जिस दिन घी खानेका मन करता है, इसे खोपरा दे देते हैं, चीनीपर मन चलता है उस दिन छुहारा दे देते हैं। कोई कहता बाबाजी माल घुटायें तो कहते चिटकी ला दे। कभी-कभार तोला-दो-तोला गुड़ स्वीकार कर लेते थे। साधुको घी-चीनी खिलानेकी मनाही करते थे, बड़े विरक्त थे, रात-दिन भजन करते। नगरमें आते तो पहले जो मिल जाता, उसके भोजन कर लेते। मस्त रहते और खूब भजन करते।

गृहस्थीमें रहकर वैराग्यके नशेमें खूब चूर रहे। ब्रह्मचर्यका पालन करे। खाने-पीनेके लिये उत्तम तो यह है कि एक ही चीज

खाये, ज्यादा करे तो दो चीज ले ले; दूध, चाय, पानीकी छूट है। चाहे दाल-भात खाओ, चाहे दाल-फलका, इस तरह परहेज रखे। एकान्तमें खूब भजन-ध्यान करे। ध्रुवजीकी तरह नम्बर लगा दे। बारहवें अध्यायमें भगवान्‌ने भक्तोंके लक्षण बताये हैं, उन्हें मानसिक साइनबोर्डपर लिखकर रखे—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥

(गीता १२। १३—१९)

जो पुरुष सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित, स्वार्थरहित, सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित, अहंकारसे रहित, सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है; तथा जो योगी निरन्तर संतुष्ट है, मन-इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए है

और मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है—वह मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है।

जिससे कोई भी जीव उद्वेगको प्राप्त नहीं होता और जो स्वयं भी किसी जीवसे उद्वेगको प्राप्त नहीं होता; तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादिसे रहित है—वह भक्त मुझको प्रिय है।

जो पुरुष आकांक्षासे रहित, बाहर-भीतरसे शुद्ध, चतुर, पक्षपातसे रहित और दुःखोंसे छूटा हुआ है—वह सब आरम्भोंका त्यागी मेरा भक्त मुझको प्रिय है।

जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मोंका त्यागी है—वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है।

जो शत्रु-मित्रमें और मान-अपमानमें सम है तथा सरदी, गरमी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें सम है और आसक्तिसे रहित है।

जो निन्दा-स्तुतिको समान समझनेवाला, मननशील और जिस किसी प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होनेमें सदा ही सन्तुष्ट है और रहनेके स्थानमें ममता और आसक्तिसे रहित है—वह स्थिरबुद्धि भक्तिमान् पुरुष मुझको प्रिय है।

थोड़े दिन करके देखो, दो ही चीज दो बार ही ले। खूब संयम रखे। कोई भी स्त्री हो, चाहे माँ-बहिन ही हो, नीची दृष्टि करके बात करे। पहले ऐसा ही संयम था अब नहीं है। कई बार मनमें आती है इस प्रकार संयम करें कि माँ-बहिनतक भी न दीखें। मेरे तो इस प्रकारका संयम है। इस तरह दृष्टि रहे कि दीखे ही नहीं। कल संजयकी बात पढ़ी थी, अपने ही चरणोंकी ओर दृष्टि रहे, दूसरेको देखे ही नहीं। ब्रह्मचर्यका खूब पालन करे। न तो मेरा कहनेका अधिकार है एवं न कोई करार है, आपकी

इच्छा हो तो करें। अपने तो यह रखे उसके फलस्वरूप भले ही नरक मिले, फलकी बात ही न करे।

अपनी स्पेशल ट्रेन चलाये, नरकमें ले चले, खूब कीर्तन करे; कुंभीपाक, रौरव, महानरक, नरककी यात्रा करे, वैकुण्ठको नमस्कार करे। कोई कहे भगवान् बुलाते हैं तो कहे कि भगवान्‌की इच्छा हो तो वह भी आ जायँ। वह आ जायँ तो और शीघ्र काम हो जाय। वे साथ ले लेवें तो स्पेशल ट्रेन खूब जोरसे चले। आपको तो जैसा नरक है वैसे ही भगवान् हैं। यात्रामें क्या-क्या आयगा?

मुझे भगवान् मौका दें तो नरक ही पहले आयगा, पहले ही विचार करके चलें, अन्यथा यात्रा क्यों करते हो और सुख चाहते हो, सुख चाहो तो घरमें रहो। वही साथमें आये जो प्राण देनेको तैयार हो।

अधिक व्यक्तियोंकी आवश्यकता नहीं है। स्पेशल ट्रेन न लेकर डिब्बा ही ले लें। ट्रेनमें अधिक व्यक्तियोंकी आवश्यकता रहती है। लोग तीर्थयात्राके लिये बड़ी-बड़ी स्पेशल ट्रेन चलवाते हैं। हमलोग नरकोंकी स्पेशल ट्रेन चलवायें। जो आनन्द नरकमें आयगा वह वैकुण्ठमें आ ही नहीं सकता। तीर्थयात्रामें गये, देवताओंके मन्दिरमें जो आनन्द नहीं आया वह मनुष्योंके बीचमें आ गया।

मन्दिरोंमें सिपाहियोंद्वारा धक्का पड़ता। अपने वैकुण्ठमें भीड़में नहीं पड़ना है। सत्संगमें तो भीड़ भी अच्छी है, वे रास्ता देंगे। वैकुण्ठकी भीड़ तो धक्का देगी, भीड़ बहुत है, मार्ग संकरा है। नरकका द्वार खुला है। वे लोग आपका स्वागत करेंगे। वहाँ नामका-गुणोंका कीर्तन करो।

वैराग्यकी महिमा

संसारके भोगोंमें जो आनन्द है, उससे लाखों गुना अधिक आनन्द वैराग्यमें है। वैराग्यके समान संसारमें कोई वस्तु नहीं है। भगवान् कहते हैं—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५। २२)

इन्द्रियोंके जितने भोग हैं ये दुःखके ही कारण हैं एवं आदि-अन्तवाले हैं, इसलिये विवेकी इनमें नहीं रमते। भोगोंमें रमनेवालोंको मूर्ख बतलाया गया है, वास्तवमें इनमें दुःख ही है। महर्षि पतञ्जलिने यही बात कही है—

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।

(पा० यो० साधनपाद १५)

परिणाम, ताप, संस्कारके दुःखोंसे और गुणोंकी वृत्तियोंके परस्पर विरोधसे विवेकीके लिये सब कुछ अर्थात् विषयजन्य सुख भी दुःख ही है।

हमलोगोंको इनमें सुख प्रतीत होता है। भगवान् कहते हैं—भोगोंमें सुख नहीं है अपितु दुःख ही है। रोगी कुपथ्य करता है, परिणाममें दुःख ही होता है। एक बार जीभके स्वादसे आराम मालूम पड़ता है, फिर दुःख ही होता है, रोग बढ़ जाता है एवं शीघ्र ही मर जाता है।

रुपया कमाते हैं, दूसरोंकी अधिक आय देखकर दुःखी हो जाते हैं—यह ताप हुआ। हम अपने महलमें ऐश-आराम करते हैं, घाटा लग गया, सब बिक गया। बाहर निकलते हैं तो देख-देखकर रोते हैं। दुःख सहा नहीं जाता कि पहले यह महल था, यह मोटर थी, सब बिक गया। पहली बातें याद कर-करके रोता है। सुखके संस्कार

प्रवचन—दिनांक १२-८-१९४०, सोमवार, साहबगंज, गोरखपुर।

दुःख देते हैं। संसारके जितने सुख हैं, उनमें दुःख मिश्रित है।

पुत्र भी यदि बात नहीं मानता है तो दुःख होता है। रुपयेमें भी दुःख है। रुपया कमानेमें परिश्रम, रक्षा करनेमें परिश्रम होता है। बड़ी चिन्ता रहती है, हर प्रकार दुःख-ही-दुःख है। राजा ले ले तो दुःख, चोर ले ले तो दुःख ही है। इसलिये जिस सुखके साथ दुःख नहीं है ऐसे सुखकी प्राप्ति करनी चाहिये। यही मनुष्यजीवनका उद्देश्य है।

संसारमें जितने भोग हैं वे दुःखके ही हेतु हैं, इसलिये ज्ञानीलोग परमात्माके स्वरूपमें रमते हैं, इनमें नहीं रमते।

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति॥

(गीता ५। २४)

जो पुरुष अन्तरात्मामें ही सुखवाला है, आत्मामें ही रमण करनेवाला है तथा जो आत्मामें ही ज्ञानवाला है, वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके साथ एकीभावको प्राप्त सांख्ययोगी शान्त ब्रह्मको प्राप्त होता है।

वह परमात्मामें क्रीडा करनेवाला सच्चिदानन्द परमात्माको प्राप्त होता है। वही सच्चा सुख है। हमको जो सुख ध्यानमें मिलता है, वह त्रिलोकीके राज्यमें भी नहीं मिलता। संसारके भोगोंका सुख तो मनका माना हुआ है, वास्तवमें है नहीं। हमारे देशमें बंगाली पहनावा दूसरी तरहका, काबुली दूसरी तरहका, चीनी दूसरी तरहका है। बतलाइये किसमें ज्यादा सुख है? विचार करनेपर किसीमें भी सुख नहीं है। अपना-अपना फैशन है, मनका माना हुआ है। इसी प्रकार सारे संसारके पदार्थोंमें यही बात है। असली सुख तो परमात्मामें ही है, वही वास्तविक सुख है। जो वास्तवमें सुख होगा,

वह सबके लिये आनन्ददायक होगा। जितने चराचर जीव हैं उन सबको उसमें आनन्द मिलेगा। वह कल्पित सुख नहीं है, वास्तविक सुख है। भगवान्‌के परमधाममें जन्म-मरणका दुःख नहीं है, किसीको चिन्ता, भय, क्लेशका नामोनिशान नहीं है। स्वर्गमें भी दुःख है। यहाँ एवं स्वर्गमें इतना ही भेद है कि वहाँ जन्मना-मरना नहीं है, जाना-आना है। उनके भोग दिव्य हैं। वहाँ सुख थोड़ा अधिक है। राग-द्वेष है, ईर्ष्या है। एक-दूसरेको देखकर जलते हैं, परन्तु भगवान्‌के परमधाममें राग-द्वेषका नामोनिशान नहीं है, इसलिये वही वास्तविक सुख है। जब भगवान्‌का ध्यान लगता है, उस समय दुःखका अभाव हो जाता है। यह अकाट्य सिद्धान्त है।

मीराबाई लगभग चार सौ वर्ष पूर्व हुई थी। मीराके पास विष भेज दिया गया, वह अमृत हो गया। बाघको उनके महलमें छोड़ दिया, मीरा उसके चरणोंमें पड़ गयी, कहा ये साक्षात् नरसिंह भगवान् हैं, बाघ उनको चाटने लगा।

इसी प्रकार सुधन्वाकी भी बात है। उससे पूछा गया तुमको तेल क्यों नहीं जलाता? वह भगवान्‌का ध्यान कर रहा था, तेल उसके लिये शीतल जलकी तरह हो गया, यह ध्यानकी मस्ती है। वहाँ दुःख-चिन्ता नहीं पहुँच सकते। सारा शरीर जला दो पर चित्तमें प्रसन्नता रहती है। कैसी आश्चर्यकी बात है। उस सुखकी भगवान् भी प्रशंसा करते हैं—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६। २२)

परमात्माकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और परमात्मप्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित योगी बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता।

वह अपार असीम आनन्द है। जिसको पाकर उससे बढ़कर आनन्दका अनुभव नहीं करता। वह आनन्दसे भर जाता है, उसमें और गुंजाइश नहीं है। सब योनियोंमें दुःख और सुख दोनों ही हैं। शास्त्रोंके अनुसार दुःखोंका अत्यन्त अभाव इस मनुष्य योनिमें ही हो सकता है। कपिलजी कहते हैं—दैहिक, दैविक एवं भौतिक तीनों प्रकारके दुःखोंका अभाव ही मुक्ति है।

जहाँ दुःखोंका अत्यन्त अभाव है, उसको जानना चाहिये, उसका अनुष्ठान करना चाहिये। अन्यथा मरोगे तो इन दुःखोंको साथमें लिये मरोगे। दुःखका अत्यन्त अभाव हो जाय, इसके लिये कटिबद्ध होकर चेष्टा करो, वैराग्ययुक्त चित्तसे चेष्टा करो, तत्परतासे करो। चित्तकी वृत्तियोंमें खूब वैराग्य लाकर तत्परतासे साधन करना चाहिये।

ईश्वरने आपको ज्ञान दिया है। मदिरा पिये हुएकी तरह पागलपन नहीं करना चाहिये। हमलोग उन्मत-से हो रहे हैं। आज हमारी मृत्यु हो जायगी तो क्या दशा होगी। आज हमारी जो परिस्थिति है वही हमारा स्वरूप है। आज मर जायेंगे तो यही स्थिति साथ चली जायगी।

हम मनुष्य हैं, वह मार्ग खोजना चाहिये, जिसमें दुःखोंका अत्यन्त अभाव हो जाय। सारे दर्शनोंका प्रयोजन है सारे दुःखोंका नाश कराकर सुखकी प्राप्ति करा देना।

हमलोग गीतापाठ करते हैं, उसका भाव समझमें आ जाय तो शरीरके नाशसे हमें किञ्चित् भी दुःख नहीं हो सकता। गीता यहाँ है, उसके रहते हम दुःखी हो रहे हैं, कितनी मूर्खता है। रात-दिन दुःखी हो रहे हैं। उसकी निवृत्तिके लिये उपाय नहीं करते। भगवान् कहते हैं वह पूर्ण आनन्द है, वह कभी समाप्त

नहीं होता। वह देश, काल, वस्तु सब रूपमें अनन्त है, सदाके लिये कायम रहता है। प्रत्येक रोम-रोम आनन्दसे भर जाते हैं। सारा ब्रह्माण्ड आनन्दसे भर जाता है। इन्द्रासनका भोग सूकर-कूकरके भोगोंकी तरह प्रतीत होने लगता है। उस सुखके लिये हमको जी-तोड़ परिश्रम करना चाहिये। हमें यदि आगमें प्रवेश करना पड़े तो प्रसन्नताके साथ प्रविष्ट हो जाना चाहिये ताकि हमें दुःखका दर्शन नहीं करना पड़े। एक बार हमें अपने प्राणोंको भी उस सुखके लिये अर्पण कर देना चाहिये। ईश्वरने हमें विवेक-ज्ञान इसलिये नहीं दिया है कि हम इसे बर्बाद कर दें, किन्तु लज्जाकी बात है, शास्त्र बता रहे हैं, महापुरुष भी मिल ही जाते हैं, वे समझा रहे हैं, तब भी हम नहीं चेतते हैं।

हमें किस बातकी कमी है? उत्तम देश, उत्तम जाति, उत्तम काल, वैदिक सनातन धर्मसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है, उत्तम सत्संग, फिर क्यों दुःखी हो रहे हैं? चारों ओरसे दुःखोंकी बौछार हमारे ऊपर पड़ रही है। यह हमारी मूर्खता ही है। आजसे ही उसे हटाकर तत्परतासे चेष्टा करनी चाहिये। जी-जानसे लड़े, मर जाय पर मूर्खताको सहन न करे। यदि इसी चौरासी लाख योनिमें भ्रमण करना हो तब तो सुनना ही व्यर्थ है। हमारा कहना भी व्यर्थ है, फिर तो यह व्यसन ही हो गया। फिर भी यह याद रखनेकी बात है। अन्य व्यसनोंसे यह व्यसन अच्छा है, किन्तु हम व्यसनके लिये इकट्ठे नहीं होते, वास्तवमें किसी तथ्यके लिये इकट्ठे होते हैं। उसकी सिद्धि नहीं होती तो हमें विचार करना चाहिये कि किसलिये हम शत्रुसे हार रहे हैं। हमारा शत्रु कौन है? काम, क्रोध, लोभ आदि जितनी आसुरी सम्पदा है, यही हमारे सुखमें बाधा देनेवाली है।

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥

(गीता ३। ३४)

इन्द्रिय-इन्द्रियके अर्थमें अर्थात् प्रत्येक इन्द्रियके विषयमें राग और द्वेष छिपे हुए स्थित हैं। मनुष्यको उन दोनोंके वशमें नहीं होना चाहिये, क्योंकि वे दोनों ही इसके कल्याणमार्गमें विघ्न करनेवाले महान् शत्रु हैं।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

(गीता ३। ३७)

रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह बहुत खानेवाला अर्थात् भोगोंसे कभी न अघानेवाला और बड़ा पापी है, इसको ही तू इस विषयमें वैरी जान।

भगवान् आज्ञा देते हैं, आज्ञा ही नहीं सहायता देनेके लिये तैयार हैं। सहायता देनेवाला बलवान् हो तो कितना साहस होता है। हम सबसे बलवान् हैं, हमारे मन, बुद्धि बलवान् हैं, भगवान् आज्ञा देते हैं—

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥

(गीता ३। ४३)

इस प्रकार बुद्धिसे पर अर्थात् सूक्ष्म, बलवान् और अत्यन्त श्रेष्ठ आत्माको जानकर और बुद्धिके द्वारा मनको वशमें करके हे महाबाहो! तू इस कामरूप दुर्जय शत्रुको मार डाल।

वे सम्मति दें तो हमें क्या भय है। हमें कटिबद्ध होकर शत्रुका सामना करना चाहिये। भगवान् जिसकी सहायता करते हैं उसकी विजय अवश्य होती है। अर्जुन कहते हैं प्रभु, हम यह भी नहीं

जानते कि युद्ध करना ठीक है या न करना, हमारी विजय होगी या शत्रुकी। भगवान् कहते हैं तू जीतेगा। तुम केवल निमित्तमात्र हो जा। यह आश्वासन अर्जुनको ही नहीं, हम सबको दे रहे हैं। निमित्त बना रहे हैं, पड़ा हुआ यश ले लेना चाहिये। मरे हुएको मारनेमें क्या देर लगती है। अर्जुनने तो स्पष्ट कह दिया था, मैं युद्ध नहीं करूँगा, पर भगवान् कब माननेवाले थे, खड़ा करके शत्रुओंको मरवा दिया। अच्छे पुरुषोंमें कई बातें होती हैं—

१. वास्तवमें अच्छे पुरुष सेवा नहीं कराते।

२. वास्तवमें अच्छे पुरुष मान-बड़ाई नहीं चाहते।

३. वास्तवमें अच्छे पुरुष प्रणाम नहीं करवाते।

वे सेवा नहीं करवाते। वे देखते हैं कि यह पात्र है या नहीं। जो अपने माता-पिताकी सेवा नहीं करता, उससे वे सेवा नहीं कराते। वे समझते हैं जब यह जन्म देनेवाली माताकी ही सेवा नहीं करता तो हम कैसे करायें? वे शिक्षा देते हैं कि तुम्हें सबकी सेवा करनी चाहिये। जो सबको प्रणाम करता है, सबकी सेवा करता है, अच्छे पुरुष उसे मना नहीं करते।

हमें महात्माकी सेवा करनी हो तो सबकी सेवा करनी चाहिये, अन्यथा उनकी सेवाके पात्र हम कभी नहीं बन सकते। कभी वे स्वीकार भी करें तो उसे वास्तवमें पूरा लाभ नहीं होता, अल्प ही होता है। सबको नारायण समझकर सेवा करे तो संकेतमात्रके पालनसे उसका कल्याण हो सकता है। वास्तवमें हम महात्माकी सेवाके पात्र नहीं हैं। पात्र होनेके बाद उद्धारमें विलम्ब नहीं होता। इसलिये हमें पात्र बनना चाहिये। भगवान् सब जगह उपस्थित हैं। केवल पर्दा पड़ा हुआ है वह हटाना है।

भगवान्की दयाका अनुभव करें

भगवान्की कितनी दया है, उनकी छत्रछायामें हम रह रहे हैं। केवल दया मानना ही है, फिर वह शान्ति हमारे लिये तैयार है, किन्तु हम उन्हें सुहृद् मानते ही नहीं, हमें इसीका दण्ड मिल रहा है।

प्रभु वास्तवमें उपस्थित हैं, हम उन्हें मानते नहीं। उनकी दया है, उनका हमारे सिरपर हाथ है, उनका बड़ा प्रेम है—इस भावसे भावित होनेपर हमें प्रत्यक्ष शान्ति मिलेगी। भगवान्का वचन है—

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५। २९)

मुझे सम्पूर्ण भूतप्राणियोंका सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्वसे जानकर शान्तिको प्राप्त होता है।

हमारे हृदयमें आशा-प्रतीक्षा होने लगे, फिर भगवान्के मिलनेमें विलम्ब ही क्या है?

हमारे घरपर कोई भोजन करने आता है, यदि हम समझते हैं कि भिखारीको भोजन करा रहे हैं तो भिखारीको ही करा रहे हैं। यह समझें कि भगवान्के भक्तकी सेवा कर रहे हैं तो भक्तकी ही सेवा कर रहे हैं। यह समझें कि साक्षात् नारायणको ही भोजन करा रहे हैं तो वहाँ नारायण ही भोजन कर रहे हैं।

राजा रन्तिदेव कुत्तोंको, चाण्डालको भोजन करा रहे हैं, किन्तु वे नारायण ही समझ रहे हैं। उनके सामने नारायण ही

प्रवचन—दिनांक १४-८-१९४०, बुधवार, १९९७, गोरखपुर।

प्रकट हो गये। हम रोटी डालते हैं, हमारी यह बुद्धि है कि यह कुत्ता है, यह भिखारी है तो वह हमारे लिये वही है। ऊँची-से-ऊँची बुद्धि यह है—

> बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
> वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥
>
> (गीता ७। १९)

बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त पुरुष, सब कुछ वासुदेव ही है—इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।

आज यह संसार हमें अनेक रूपोंमें दीखता है। जब हमारी आत्मा पवित्र हो जायगी, तब हमें यह संसार दूसरे ही रूपमें दीखने लगेगा।

सबसे यही प्रार्थना है कि जिस किस प्रकारसे भी हो, हम जिस कामके लिये आये हैं वह पूरा होना चाहिये। एक नम्बर बात है कि प्रभुको कभी नहीं भूलें, चलते, उठते, बैठते हर समय याद रखना चाहिये। नामका जप तथा स्वरूपका ध्यान हर समय रहना चाहिये।

प्रत्येक अणु-अणुमें उनका दर्शन करना चाहिये। वाणी, श्वास, मनसे किसी प्रकार भी जप करो, जिह्वासे जप करना तो सीधी बात है। नियमित रूपसे एकान्तमें बैठकर भी करना चाहिये। बाकी सब समय चलते, उठते, बैठते करना चाहिये। दूसरी बात—सबको साक्षात् परमात्माका स्वरूप समझकर सबकी सेवा करनी चाहिये। यह बुद्धि नहीं भी हो, तब भी हमें सबको सुख पहुँचाना चाहिये, प्रेमपूर्वक व्यवहार करना चाहिये,

क्योंकि भगवान् कहते हैं—मैं सब भूतोंका सुहृद् हूँ। एक-दो बूँद सुहृदता तो हममें भी होनी चाहिये।

भक्तोंका लक्षण भगवान्ने बताया है—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥

(गीता १२। १३)

जो पुरुष सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित, स्वार्थरहित, सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित, अहंकारसे रहित, सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है।

लोग हमें भक्त कहते हैं। हमारे हृदयमें प्रेम और दयाभाव होना चाहिये। इसकी पहचान यह है कि हम शरीर, मन, वाणीसे दूसरोंका हित करें। भगवान्को याद करें एवं सबपर दया-प्रेम करें। नित्य सत्संग या स्वाध्याय करें, चाहे पाँच मिनट ही हो।

नियमके पालनसे हृदय पवित्र होता है, वाणी पवित्र होती है। इससे ही भगवान्की स्मृति तथा दया-प्रेमका भाव पैदा होता है। बिना सत्संगके भगवान्का भजन नहीं होता।

छोटी-सी बात है, किन्तु फल महान् है। हमारे जो पूज्य हों उनको नमस्कार करना चाहिये, इसकी बड़ी भारी महिमा है।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

नित्य अपने पूज्यजनोंका आदर करनेवाले तथा उन्हें श्रद्धा-भावसे प्रणाम करनेवालेके आयु, विद्या, कीर्ति एवं बल इन चारोंकी वृद्धि होती है।

इसी प्रकार दूसरी बात यह है कि हमारे घर भोजन बनता है,

यावन्मात्र संसारको भोजन देकर भोजन करना चाहिये, अर्थात् बलिवैश्वदेव करना चाहिये। इसमें समय तीन मिनटसे अधिक नहीं लगता, खर्च एक पैसेका लगता है, किन्तु महिमा बहुत भारी है। भगवान्‌ने कहा है—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

(गीता ३। १३)

यज्ञसे बचे हुए अन्नको खानेवाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं और जो पापीलोग अपना शरीरपोषण करनेके लिये ही अन्न पकाते हैं, वे तो पापको ही खाते हैं।

जो इस प्रकार नहीं करता वह पापमय भोजन करता है। पंचमहायज्ञ संक्षेपसे इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। घरमें माता-पिताको प्रणाम करे तो उसके अन्तर्गत सब आ जाते हैं। यक्षने युधिष्ठिरसे पूछा कि सबसे बड़ा कौन है? उन्होंने उत्तर दिया माता-पिता। उन सबसे बड़ा ईश्वर है, उनको न बिसारे। उनके स्वरूपका ध्यान तथा नामका जप करे, फिर सब बात अपने-आप हल हो जायेगी।

हमारी उन्नति कैसे हो ?

स्वामीजी—एकान्तमें किन बातोंका विचार करना चाहिये।

उत्तर—हमारी उन्नति उत्तरोत्तर कैसे हो? इसी विषयका विचार करना चाहिये।

प्रश्न—ध्यानकी बात ठीकसे समझमें नहीं आये, तब क्या करना चाहिये ?

उत्तर—उस विषयकी बातचीत करनेसे ज्यादा समझमें आयगा। जैसा समझमें आये उसीके अनुसार करता रहे। करते रहनेसे समझमें आयगा। ध्यान उपासना है, इससे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है।

ध्यान करते समय मनुष्यकी वृत्तियाँ प्रकृतिके अप्रकटरूपमें माचिसकी तीलीमें अग्निकी तरह लीन हो जाती हैं, इससे नींद आ जाती है। चेतनताकी ओर अधिक लक्ष्य करनेसे, आनन्दकी ओर लक्ष्य रखनेसे नींद नहीं आती। पहलेका अभ्यास है नींदमें भी आनन्दका अनुभव आनेका, अतः नींद आने लगती है। बुद्धि-विवेकको विचारका काम दिया जाय तो वृत्तियाँ जागृत रहती हैं, नींद नहीं आती। ज्ञानके मार्गमें दृष्टा साक्षी होकर रहे तो नींद कम आयेगी।

प्रश्न—सुनी हुई बातें समझमें भी आती हैं, कही भी जाती हैं, परन्तु उसमें स्थिति नहीं होती तो कहना-सुनना बाधक है क्या ?

उत्तर—कहना-सुनना तो साधन ही है। 'मैं जानता हूँ' यह

प्रवचन—दिनांक २९-९-१९३९, प्रातःकाल, बाँकुड़ा।

अभिमान बाधक है। विवेक-शक्ति बढ़ानी चाहिये। हठपूर्वक कुपथ्यका त्याग भी उत्तम है। वैराग्ययुक्त त्याग तो उत्तम है ही। झूठ-कपट आदि सब चीजें कुपथ्य हैं। इनका चाहे जिस प्रकार हो, त्याग करना चाहिये। कुपथका त्याग करके सुपथपर चलना चाहिये। तुलसीकृत रामायणमें कहा है—

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रकटै अवगुनन्हि दुरावा॥

मनको बार-बार समझायें, उसपर शासन करें। मनुष्यको कोई आधार तो चाहिये ही। एक नम्बर आधार तो भगवान्‌का है, दो नम्बरमें महापुरुष एवं तीन नम्बरमें शास्त्रका आधार है। किसीका भी आधार न हो तो चार नम्बरमें अपनी बुद्धिका तो होना ही चाहिये। बुद्धिका आधार क्यों? बुद्धिके द्वारा विवेकपूर्वक जिन-जिन अच्छे कामोंका निर्णय करे, उनका आचरण करना ही बुद्धिका आधार है।

किसी-न-किसी चीजका आधार चाहिये। कोई काम निराधार नहीं होता। सबसे बढ़कर आधार परमात्माका है, वह सर्वज्ञ सर्वव्यापी है, उसका अभाव ही नहीं है। शास्त्र, महात्माका तो कहीं अभाव भी हो सकता है, पर भगवान् तो सर्वत्र हैं। भगवान्‌के आश्रित होकर विचरे, जैसे पतिव्रता स्त्रीके पतिका ही आधार होता है। उत्तम शिष्यके लिये गुरुका ही आधार है। छोटे बालकके माताका ही आधार है। इसी प्रकार परमेश्वरका आधार होना चाहिये। यह शरणागतिका भाव है।

बच्चेका पालन करनेवाली, रक्षा करनेवाली, प्रेम करनेवाली सब कुछ माँ ही है। उसके लिये तो माँ ही ईश्वर है। माँकी जितनी शक्ति है वह उस बच्चेके लिये है। प्रभुसे प्रेम करे, प्रभुकी स्मृति रखे। प्रभुसे एक क्षणका भी वियोग न हो। उन्हें ही

पुकारता रहे। जबतक माँ न आ जाय पुकारता ही रहे। आनेमें माँ विलम्ब करे तो भी बच्चा पुकारता ही रहता है। उसे विश्वास है कि माँ अवश्य आयेगी। माँको भी यह विश्वास है कि यह तुम्हें बुलाता है, तुम्हारे जाते ही चुप हो जायगा और वह आ जाती है। ऐसे ही हमें परमेश्वरपर भरोसा करना चाहिये। बच्चा सबका वियोग सह सकता है पर माँका नहीं सह सकता। उसे कभी भय लगता है तो दौड़कर माँकी गोदमें घुस जाता है। माँ, माँ चिल्लाता है। बस, माँकी गोदमें जाते ही उसे आश्वासन मिलता है, भयरहित हो जाता है। घरमें बीस आदमी हैं, सब विदेश चले जायँ परवाह नहीं है, पर माँ कहीं जाने लगती है तो वह पहले तैयार हो जाता है। जैसे उसका माँका आधार सराहनीय है, ऐसे ही हमें प्रभुका आधार रखना चाहिये।

सच्चा सेवक सारी क्रिया स्वामीके लिये ही करता है। जितने पदार्थ हैं सब स्वामीके हैं। स्वामीकी प्रसन्नताके अनुसार, उनके आदेशके अनुसार, उनके संकेतके अनुसार, उनके मनके अनुसार बर्ताव करता है। ऊँचे दर्जेका मनके अनुसार, दो नम्बर संकेतके अनुसार, तीन नम्बर आज्ञाके अनुसार करता है। हमें भी उसी प्रकार परमात्माके मनके अनुसार चलना चाहिये। हमारे हृदयमें उनके मनकी प्रेरणा होने लगेगी। जिसमें वह प्रसन्न होंगे हमें पता लग जायेगा। हमारा उद्देश्य उनकी प्रसन्नताके अनुसार करना होना चाहिये। समझकी गलती रह सकती है, वह भगवान्‌के यहाँ क्षम्य है। संसारी स्वामी भी नीयत ही देखता है, भूल रह जाय तो आपत्ति नहीं है। सिद्धान्त यह होना चाहिये कि स्वामी किस बातसे प्रसन्न हैं। मनरूपी नेत्रोंसे उनको हर समय अपने निकट देखता रहे।

गीता उनका आदेश है, उनके वचन हैं। महात्मा पुरुषोंद्वारा कहे

हुए शास्त्र भगवान्‌की आज्ञाके द्वार हैं। महात्मा पुरुष भगवान्‌की आज्ञाके द्वार हैं, इस प्रकार भगवान्‌की आज्ञा मानकर चले।

अपनी सारी क्रिया भगवान्‌के अर्पण कर दे, अपने-आपको अर्पण कर दे। ईश्वरके लिये करनेवालेका स्वभाव ही ऐसा बन जाता है कि उसकी सारी क्रिया स्वाभाविक ही ईश्वरके अनुकूल होती है, प्रयत्न करना नहीं पड़ता। हाथ भी उठता है तो ईश्वरके अनुकूल। उसकी चीज उसके अर्पण कर दी गयी, अब हमारी जिम्मेवारी नहीं है। जैसे ईश्वरको रखना है रखते हैं। अपने तो सारा भार उसपर डाल दें। बस निश्चिन्त हो गये।

प्रश्न—ऐसी स्थिति कैसे हो?

उत्तर—स्वामीकी दयासे, जो अपनेपर उनकी दया मानता है वह बोझा सम्हलाकर निश्चिन्त हो जाता है। उनकी दया तो सब समय, सबपर है ही। सच्चा सेवक तो स्वामीकी ओर देखता ही रहता है। संकेत मिला और बस चल दिया। कोई चिन्ता नहीं है। भगवान् सबके हृदयमें विराजमान हैं—

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्॥

(गीता १५। १५)

मैं ही सब प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित हूँ तथा मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन होता है और सब वेदोंद्वारा मैं ही जाननेके योग्य हूँ तथा वेदान्तका कर्ता और वेदोंको जाननेवाला भी मैं ही हूँ।

सेवककी फुरणा स्वामीके विरुद्ध नहीं होती। स्वामीके विरुद्धकी कोई फुरणा हो तो वह राजद्रोहीकी है। पापाचारकी क्रियामें उन विद्रोहियोंका हाथ है। तुम्हारी बुद्धिमें भगवान् जिसे

अनुकूल कहें उसे करो, प्रतिकूल कहें उनको छोड़ दे। अपने तो भगवान्‌का ही अवलम्बन, भगवान् ही आधार रखे, यह शरणागतिका ही अंग है।

अवलम्बन—बाढ़ आ गयी। दो आदमी डालको पकड़े हुए हैं, पैर पानीमें है पर डालको पकड़े हैं।

आधार—डालपर चढ़े हुए हैं। आरामसे बैठे हुए हैं। अवलम्बनवालेने स्वयं चेष्टा करके वृक्षको पकड़ रखा है। भगवान्‌को याद करना, आज्ञानुसार प्रसन्नताके अनुसार बर्तना, मनसे ध्यान करना, वाणीसे गुणगान करना, शरीरसे सेवा करना—यह सब भगवान्‌को पकड़ना है। प्रयत्नशील होकर कर्म करना है।

आश्रित होनेवालेसे तो भगवान् जैसे चाहें स्वयं करवा लेते हैं। पकड़नेकी अपेक्षा आश्रित होनेका काम अधिक सुगम है। बाजीगरके बंदरकी तरह हो जाना है, जैसे नचावे वैसे ही नाचना है। निजका कोई प्रयत्न नहीं है। लोग हँस रहे हैं, ताली बजा रहे हैं, उसको तो स्वामीकी प्रसन्नतासे मतलब है। अपने तो स्वामीकी प्रसन्नता देखनी है। संकेत मिलता है, बस उसीकी तरह करता है, अपनी ओरसे छदाम भी नहीं मिलाता। आश्रित है, खिलाता है तो खा लेता है। अपना स्वामी तो बड़ा दयालु है। हमारा हित ही चाहनेवाला है। बाजीगर तो स्वार्थी है, पर हमारे ऐसे बुद्धिमान्, हमारा हित चाहनेवाले स्वामीके आगे हम अपनी अकल लगावें—यह मूर्खता नहीं तो और क्या है?

हमारा स्वामी हमें जमूरा बनाकर खेल करता रहे, हम उसके संकेतके अनुसार करते हुए आनन्दमें मुग्ध होते रहें। बस हम जमूरे बन जायँ। आनन्द-ही-आनन्द। हम उसके आश्रित हुए

और काम समाप्त हुआ—इतनी ही तो बात है।

सबसे बढ़कर जीवनी भगवान् रामकी है। मानस पढ़ें। यह भगवान् रामकी जीवनी है। इससे बढ़कर जीवनी नहीं मिलेगी। सबसे बढ़कर 'रामराज्य' है। सबसे बढ़कर आदर्श 'राम' हैं।

कृतज्ञता-प्रकाश—उनका भाव, लक्ष्य, उद्देश्य, जो बातें महात्मा लोग उत्तम बतलाते हैं, उनका लेख, पत्र, टीका आदिका प्रचार करना ही कृतज्ञता है। उनके चित्र, जीवनी आदिका प्रचार कोई कृतज्ञता नहीं है। जो बात वे चाहते हैं उसे हम चाहें, वे जो कहते हैं उसे हम करें। वे जिसका निषेध करते हैं उसको हम करें, यह तो हमारा बचपना ही है। वे किसीसे डरते थोड़े ही हैं। यदि वे ठीक समझते तो अपने नाम-रूपके प्रचारकी बात कहनेमें उन्हें कोई भय थोड़े ही था। जिन बातोंसे लाभ प्रतीत होता है, जैसे गीताकी टीका नित्य नियमपूर्वक पढ़नेकी बात कही जाती है। यदि यह बात ठीक समझी जाती कि चरणरजसे, पैर पूजनेसे लाभ होगा तो वह भी कही जाती। चाहे कोई करे, चाहे न करे। बहुत लोग अपना उच्छिष्ट लोगोंको खिलाकर खानेवालेका लाभ समझते हैं। मुझे तो यह बातें घृणाकी ही प्रतीत होती हैं। देनेवाले लोग भी मुझको तो अन्धकारमें ही प्रतीत होते हैं। शास्त्रमें तो यह बात कहीं मिल भी सकती है, पर मुझे तो इसका परिणाम बुरा प्रतीत हो रहा है, इसीलिये मैं इसका घोर विरोध करता हूँ। बात यह है कि दोनों ही पात्र नहीं है—न देनेवाले न लेनेवाले। उनके इस व्यवहारसे तो शास्त्रपर अश्रद्धाका ही प्रचार होता है।

गीताकी टीका आदिके प्रचारकी बात क्यों कही जाती है? वे तो भगवान्‌की ही बातें हैं। अपना तो अनुवादमात्र है। भगवान्‌की बातोंके प्रचारमें लाभ-ही-लाभ है, इसमें अपने घरकी

बात तो है नहीं। भगवान्‌की बातें माननेवालेका कल्याण हो ही जाता है। जीवन्मुक्त, महापुरुष, कारक आदि शक्तिसम्पन्न पुरुष अपात्रको भी पात्र बना सकते हैं। मेरी तो इतनी शक्ति नहीं है। जितना समय लगता है, मनुष्यको पात्र बननेमें ही लगता है, उद्धार होनेमें देरी नहीं लगती।

प्रभुसे यही प्रार्थना करे कि उपाधि तो बहुत लगी है पर अब तो यह हटे—ऐसी कृपा करें। नामकी उपाधि, जातिकी उपाधि, वर्णकी उपाधि, धर्मकी उपाधि, देशकी उपाधि, कुलकी उपाधि, शरीरकी उपाधि, साधुकी उपाधि सैकड़ों उपाधियाँ लगी हैं। जबतक उपाधि है तबतक व्याधि है। लोगोंको समझानेके लिये इनका प्रयोग करनेमें आपत्ति नहीं है, पर इनका अभिमान होना व्याधि है। जिसको जितनी ज्यादा उपाधि है, उतनी ज्यादा व्याधि है। जिसको जितनी ज्यादा उपाधि है उसके उद्धारमें उतना ही अधिक समय लगेगा। दूधमें जितना ज्यादा पानी मिला होगा, उसको जलानेमें उतना ही अधिक समय लगेगा।

मैं योगी हूँ, मैं महात्मा हूँ, मैं भक्त हूँ, यह बड़ी व्याधि है। दलदलमें गलेतक फँस गया। दूसरा जन्म इसीलिये होता है ताकि पिछले जन्मोंकी उपाधि भूल जाय।

इनका त्याग क्यों नहीं होता? आरम्भमें यह सुखप्रद लगती है, परिणामको सोचते नहीं। लड्डूमें विष मिला है, यह विश्वास होनेपर कोई नहीं खाता। मान-बड़ाई विष है, परिणाम मृत्यु है। यह जाननेके बाद फिर कोई थोड़े ही सेवन करेगा। अतः उपाधियोंसे बचें, मान-बड़ाईसे बचें।

निर्गुण और सगुणका ध्यान

सत्संग और साधनके लिये एक नम्बर तो गंगा-किनारा है। ऋषिकेश और कर्णवास दोनों ही जगह हमलोग गये, बहुत ही सात्त्विक स्थान है। रेणुका, झाड़ी सब सात्त्विक है। आठ माह तो बहुत ठीक रहता है, चार महीने जल मोटा हो जाता है, लोगोंकी प्रकृतिके अनुकूल नहीं रहता।

चित्रकूट भी जाना हुआ था। वह भूमि भी वैराग्ययुक्त एवं बहुत अच्छी है। सत्संग, भजन, ध्यानका साधन तो एक जगह ठहरकर करना चाहिये। तीर्थ जानेमें तो प्रधानता तीर्थयात्राकी रहती है।

प्रश्न—नित्यकर्म करते समय निद्रा आये तो उठकर भी कर सकते हैं क्या?

उत्तर—कोई आपत्ति नहीं है। बैठे और खड़े करनेमें कोई अन्तर नहीं है। निद्राकी अपेक्षा खड़े होकर जप-पाठ आदि करना ठीक ही है।

प्रश्न—चित्त बहुत उदास रहता है, हर समय मन एक सा नहीं रहता, इसका क्या उपाय है?

उत्तर—परमात्माकी अपनेपर हर समय दया और प्रेम समझनेसे मन हर समय आशामें प्रसन्न रह सकता है। यह बात हर समय हृदयमें समझता रहे। स्वामीकी मुझपर कितनी दया और प्रेम है, हर समय यह देखनेवाला प्रसन्न रहता है।

प्रवचन—दिनांक ३०-९-१९३९, प्रात:काल, चक्रधरपुर।

गीताकी टीकाकी बात—अति तर्क अर्थका नाश कर देता है, मूढ़ता भी ठीक नहीं है। न अति तर्कशील होना चाहिये और न बिलकुल तर्करहित ही। बीचकी बात ही ठीक है। अर्थको समझनेमें यही ठीक है।

प्रश्न—ध्यानका मर्म क्या है? जिसे समझनेसे हरदम ध्यान रह सके?

उत्तर—ध्यानका मर्म समझनेपर फिर ध्यानका त्याग नहीं बन सकता, हर समय ध्यान होता रहता है। किसी भी अच्छी चीजका मर्म समझनेपर उसका त्याग नहीं हो सकता। बालक रत्नोंका, रुपयोंका मर्म नहीं जानता, उसको मोहरें दीजिये फेंक देता है। वही बालक बड़ा होनेपर मर्म जान लेता है कि रुपयोंसे स्त्री, पुत्र आदि सब वस्तुएँ मिल सकती हैं, फिर वह रुपयोंको नहीं छोड़ता। इसी प्रकार रुपयोंकी अपेक्षा विशेष चीजका मर्म जान लेनेपर उनको छोड़ सकता है। इस प्रकार ध्यानका मर्म जान लेनेपर उसके द्वारा ध्यानका त्याग नहीं हो सकता।

मछली जलका त्याग कैसे करे? जो कुछ पदार्थ दीख रहा है, वह निराकार और जड़ है। चेतनका तत्त्व जाननेवालेको जड़में आनन्द कैसे आये। जागनेके बाद स्वप्नके पदार्थ कैसे अच्छे लगें। दूध चूसते हुए बछड़ेको स्तनोंसे परे किया जाय तो वह दूर नहीं होना चाहता। जबतक उसमें दम रहता है नहीं हटना चाहता। कोई बलवान् हटा देता है तो दूसरी बात है।

प्रश्न—ऐसी स्थिति इस ध्यानमें कैसे आये?

उत्तर—सगुणपरक उत्तर दिया जाता है, पहले निर्गुणपरक कहा गया। जैसे कामी पुरुष सुन्दर युवा स्त्रीको देखते ही रहना चाहता है, उसका स्मरण करता है, चिन्तन करता है, इसी प्रकार

जिसका मन परमात्माका चिन्तन करके आनन्दका अनुभव करता है, वह उसे छोड़ नहीं सकता। परमात्माके ध्यानका आनन्द उससे लाखों गुना अधिक है।

जिसका जो इष्ट हो, श्रीकृष्ण, श्रीराम, श्रीशंकर जो भी हो, वह सर्वोपरि होना चाहिये। गुण, प्रभाव, प्रेम, लीला सबमें वह सर्वोपरि होना चाहिये। वह इतना सुन्दर है कि आजतक देखी हुई सारी सुन्दरता उसके सामने कोई चीज नहीं। सारे संसारके गुण इकट्ठे करनेपर भी उस गुणसागरकी एक बूँदके तुल्य नहीं हो सकती। अपरिमित प्रभाव है, अनन्त है। असम्भवको सम्भव करनेवाला है। जैसे अजायबघरमें कोई नयी चीज मनको आकर्षित कर लेती है, इसी प्रकार इससे भी लाखों-करोड़ों गुनी सुन्दरता उन प्रभुमें होनेसे चित्त उनमें आकर्षित हो जाता है। ऐसे प्रभुका ध्यान करे तो इतना आनन्द हो, इतना रस हो कि ध्यान छूट ही कैसे सकता है?

इसी प्रकार भगवान्‌के स्वरूपको मनसे देखकर पकड़ ले। भगवान्‌के हजारों-लाखों चित्रोंमेंसे कोई एक चित्र पसन्द कर ले, फिर उसको सामने देखकर यह कल्पना करे कि इस चित्रवाला स्वयं कैसा होगा। ऐसे ही चित्रसे उन भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान करे।

निराकारकी दृष्टिसे—सदा-सर्वदा सब स्थानमें अलौकिक चेतनता देखता रहे, उस चेतनतामें देश, काल भी नहीं है। ऐसी चेतनता प्रज्वलित है, उसकी कोई सीमा नहीं है। जैसे आकाश सब जगह बाहर-भीतर, उस ब्रह्माण्डके भी बाहर-भीतर सब जगह है।

आकाश जड़ है वह चेतनरूप है, सबमें ओत-प्रोत होकर सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। यह सारा संसार उसमें कल्पितमात्र

दीखता है। स्वप्नमें आये हुए चित्रके समान दीखता है, संकल्पमात्र है। वस्तुतः कोई चीज प्रतीत नहीं होती। अपने-आपका अनन्त स्वरूप है। उस ध्यानमें बड़ी प्रसन्नता-शान्ति मिलती है, रसास्वाद लेता रहता है, ध्यान नहीं छूटता। उसे छोड़ना इतना कठिन हो जाता है, जैसे देहत्यागमें कठिनता होती है। चेतनता वास्तविक वस्तु है, जब उसका आनन्द प्रत्यक्ष प्रतीत होने लग जाता है, फिर उसका त्याग कैसे हो सकता है?

आकाश यदि अपने स्वरूपको समझ ले और पीछे उससे घड़ेमें समानेके लिये कहा जाय तो वह कैसे समा सकता है। उस अनन्त चेतनके तत्त्वको समझ ले फिर वह देहमें कैसे समाये? अनन्त, अपार समुद्र सुराहीमें कैसे समाये? यही ध्यानका मर्म जानना है। सब जगह अपनी आत्मा व्यापक हो रही है, उपाधियोंके नाशसे मेरा नाश नहीं है। ये सब चीजें तो मेरे संकल्पके आधारपर हैं। बादलोंके विनाशसे आकाशकी क्या हानि है? सारे संसारमें प्रलय हो जानेपर उसके कोई व्यथा नहीं होती, सारे संसारकी उत्पत्तिसे उसमें कोई हर्ष नहीं होता।

प्रश्न—चेतनता क्या है?

उत्तर—इन्द्रियाँ, शरीर, मन, बुद्धि आदि सबको जाननेवाली शक्ति चेतनता है, वही आत्मा है, वही इसका स्वरूप है। मेरा मन यहाँ नहीं था, दूसरी जगह चला गया था, इसे किसने जाना? उस चेतनताने। आज मेरी बुद्धि ठीक नहीं है, इसका ज्ञान भी उसी चेतन शक्तिको है। साधक, साधारण पुरुष और सिद्ध तीनोंकी जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिमें भेद है।

साधारण पुरुषको तीनों अवस्था सत्य प्रतीत होती है। तीनों अवस्था अपने-आपकी ही मानता है।

उच्चकोटिका साधक तीनों अवस्था अन्तःकरणकी मानता है। तीनों अवस्था और तीनों शरीरोंसे आत्माको पर देखता है, आत्माका इनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। जाग्रत्, स्वप्न दोनोंकी एक-सी ही स्थिति मानता है। सुषुप्तिमें, कारणमें कार्य लीन हो रहा है। मेरी इसमें स्थिति नहीं है। ध्यानावस्थामें संकल्प छोड़कर निर्विकल्प-अवस्थामें चला जाता है। संसारको, शरीरको संकल्पके आधारपर देखता है। संकल्प छोड़ते ही समाधिस्थ हो जाता है। साधारण मनुष्यकी अपेक्षा इसमें विलक्षणता है, संसारका अभाव है।

सिद्धकी स्थिति उससे भी विलक्षण है, सिद्धकी आत्माका तीनोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है। एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही अपने-आपमें स्थित है। इसी स्थितिमें वह सोता है, समाधिमें स्थित हो जाता है, जब जागता है तब समाधिसे जागृत होता है। जब संसारको अपने संकल्पमें देखता है, तब समाधिसे जागृत होता है। लोकदृष्टिमें उसे नींद आती है, वह अचिन्त्यावस्थामें स्थित हो जाता है। सुषुप्ति और ध्यानावस्थामें अन्तर यही है कि वह तो आत्माभिमुख ही है, सदा ही एकरस आनन्दमें स्थित है, निद्रामें मन, बुद्धि अविद्याभिमुख हैं, समाधिमें आत्माभिमुख हैं। **इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्।** यह जागृत्-अवस्था है।

सिद्धकी और भी विलक्षण अवस्था है। उसका तो इन अवस्थाओंसे कोई सम्बन्ध ही नहीं है, उसकी दृष्टिमें तो सृष्टि ही नहीं है। अज्ञानी तो स्वयंकी अवस्थाएँ मानता है।

साधक समझता है कि ये अवस्थाएँ मेरी नहीं हैं, अभाव मानता है।

सिद्ध अभाव नहीं मानता, वहाँ तो सृष्टि ही नहीं है। उसकी तो नित्यस्वरूपमें स्थिति ही है।

जाग्रत्‌में दो अवस्था होती है, किसी-किसी समय संसारके संकल्पोंका विवेचन रहता है, किसी-किसी समय नहीं रहता। जब विवेचन नहीं रहता है उस समय बातें कानमें पड़नेपर भी सुनायी नहीं पड़तीं, फिर सावधानीसे सुननी पड़ती है, शब्दोंको रटकर याद रखना पड़ता है।

जब उपरामताकी विशेष वृत्ति होती है, उस समय गीताके श्लोक भी विस्मृत हो जाते हैं। लोग जो पास बैठे रहते हैं उनका स्वरूप दीखनेपर भी नाम याद नहीं आता। बात करनी हो तो बड़ी कठिनता पड़ती है। मन, बुद्धि भी चेतनतामें लीन होना चाहते हैं। संसारका अभाव रहता है। जैसे आलस्यको हटाना कठिन है, वैसे ही लाना भी कठिन है। जो आलस्यमें आराम मानते हैं, उनके लिये लाना कठिन नहीं है। सुप्तावस्था एवं आलस्य भी सुषुप्ति लाकर संसारका अभाव करते हैं।

चेतना भी ध्यानावस्था लाकर संसारका अभाव करती है।

साधारण मनुष्य अल्प है, साधक महान् है एवं सिद्ध महान्, अल्प कुछ नहीं है।

अनमोल बातें

१. हमारेमें कपट बिलकुल नहीं होना चाहिये।

२. गुरुजनोंको नित्य प्रणाम करना चाहिये।

३. बलिवैश्वदेव नित्य करना चाहिये।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

(गीता ३। १३)

यज्ञसे बचे हुए अन्नको खानेवाले पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं और जो पापीलोग अपना शरीरपोषण करनेके लिये ही अन्न पकाते हैं, वे तो पापको ही खाते हैं।

४. सन्ध्या, गायत्री आदर और प्रेमसे समयपर करना चाहिये। रोज बेगार काटते हैं, उतने ही समयमें बहुत लाभ उठा सकते हैं। प्रातःकालीन सन्ध्या सूर्योदयसे १०-१५ मिनट पहले तथा सायंकालीन सन्ध्या सूर्यास्तसे १०-१५ मिनट पहले होनी चाहिये। बिना ऋतुका बोया हुआ फल नहीं लगता, असमयका अन्न नहीं फलता, इसी तरह सन्ध्या, गायत्री नहीं फलती।

५. गीताका अर्थसहित विचारकर पाठ करना बहुत ठीक है। गीताके विषयमें चाहे जैसे ही पूछो उसका जवाब आप दे सको ऐसा बनना चाहिये। एक श्लोकको लेकर अपना जीवन बना लो। यही साधन है।

६. सबसे बढ़कर असाधारण बात यह है—परमात्माको हर समय याद रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये तथा परमात्माको भुलानेवाली चीजको छोड़ देना चाहिये।

७. सत्संग जहाँ-जहाँ मिले, वहाँ जानेकी चेष्टा करनी चाहिये। सत्संगमें सुनी हुई बातका मनन करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

८. गीता १६। १—३ में बताये गये दैवी सम्पदाके गुणोंका नित्य स्मरण कर लेना चाहिये कि ये गुण हमारेमें हैं या नहीं।

९. गीता १६। ४ तथा २१में बताये गये आसुरी सम्पदाके लक्षणोंमेंसे जो लक्षण अपनेमें घटते हों उनका त्याग कर देना चाहिये।

१०. बड़े जोशके साथ आगे बढ़े। झूठ-कपटका व्यवहार न करे।

११. सबका सार कहा जाता है सबकी आत्माको दयाभावसे, उदारचित्तसे या निःस्वार्थभावसे सुख पहुँचाये। दूसरोंकी आत्माको कैसे सुख पहुँचे यह भाव रखना चाहिये। भजनसे जैसा लाभ है वैसा ही इससे है।

१२. सत्यका सेवन, सत्यकी उपासना करे।

१३. कलियुगमें दो जप प्रधान हैं—'**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' एवं '*हरे राम हरे राम*' पूरा मन्त्र कृष्णके ध्यानवालेको 'कृष्ण', रामके ध्यानवालेको 'राम', विष्णुके ध्यानवालेको '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' का जप करना चाहिये।

स्त्रियोंके लिये साधारण बातें बतलायी जाती हैं।

(क) कपड़ा नील तथा मिलका नहीं पहनना चाहिये; जूती, चूड़ी पवित्र पहननी चाहिये। यानि जूती चमड़ेकी, चूड़ी लाहकी, कपड़ा मिलका बनाया न हो। नीलका त्याग है, क्योंकि यह मुक्तिमें बाधक है, चमड़ेका त्याग गायोंके लिये है तथा कपड़ोंमें मिलका त्याग चरखेके लिये है।

(ख) कलह यानि कठोर वचनका त्याग करना चाहिये।

(ग) घरमें बड़ोंको नित्य प्रणाम करना चाहिये।

(घ) भोजनमें भेद नहीं करना चाहिये।

(ङ) पातिव्रत धर्मका पालन करना चाहिये। पतिकी आज्ञाके अनुसार, पतिकी प्रसन्नताके अनुसार पतिके अनुकूल छायाकी तरह चलना चाहिये।

(च) विधवा, सुहागिन सबको उदारचित्तसे ईश्वरकी आज्ञा मानकर सबकी सेवा निष्काम भावसे करनी चाहिये। सेवासे मुक्ति हो जाती है, घरमें बालकोंसे लेकर वृद्धतक तथा अतिथि सबकी सेवा करे।

१४. संसारकी ओरसे प्रीति हटाकर संसारसे वैराग्य करके मनको परमात्मामें लगाओ। भगवत्प्राप्ति न हो तो मेरी जिम्मेदारी है।

१५. गीता २। ६४-६५ के अनुसार राग-द्वेषको त्यागकर सारे भोग भोगो, इससे यह बात सिद्ध होती है कि व्यवहारको रखो, किन्तु आसक्ति छोड़ दो।

१६. पहले सोच लेना चाहिये कि जिसके द्वारा नरकमें जाते हैं उसका त्याग कर दें। आप बात तो करते हैं वैकुण्ठकी, तैयारी हो रही है नरककी। गीता १६। २१ के अनुसार काम, क्रोध और लोभ तीनों ही नरकके द्वार हैं और चौथा द्वार मुक्तिका है, इन तीनोंको छोड़कर मुक्तिका रास्ता ले। गीता १६। २२ के अनुसार साधन करनेवाला परमात्माको प्राप्त होता है। स्त्री-प्रसंगका जिस समय शरीरमें विकार होता है उस समय अपनी काछमें दो नसें हैं उनमें कामका विकार होगा, धातुक्षीणता आदि बीमारियाँ पैदा हो जायँगी। जिस समय लोभ जाग्रत् होता है, उस समय अपने हृदयमें दो वृत्तियाँ जागेंगी। दोनों वृत्तियोंकी लड़ाई होगी। क्रोधमें शरीरमें दो स्थानोंपर

आक्रमण होता है। मस्तकमें गर्मी होगी, हृदयमें जलन होगी, जब क्रोध ज्यादा जाग उठेगा तो आग लग जायगी। इसका स्वरूप अग्नि है, वह हृदय और मस्तकको जलायगा, उत्तम कर्मोंको जलायगा, खूनको जलायगा। चिनगारी बाहर निकलेगी तो बाहर भी जलायगी, खोटा वचन चिनगारी है, ये जिसके प्रति कहे गये उसे जलायेंगे। चिनगारीकी हवा पहुँचेगी तब आस-पासवाले भी जलेंगे। क्रोधके वशीभूत होगा तो मोटी-मोटी चिनगारियाँ उछलकर मारपीट करा देंगी। जबतक तीनोंको वशमें नहीं कर लोगे तबतक वास्तवमें नरक है।

१७. मरनेके समय अपनी सात्त्विक वृत्ति होगी तो स्वर्गमें, तामसी होगी तो नरकमें जाना पड़ेगा। यह कभी ऊपर, कभी नीचे घड़ीयंत्रकी तरह संसारचक्रमें घूमना है, संसारसे उद्धार चाहते हो तो तीनों बातों (काम, क्रोध, लोभ)-को त्याग दो तो यमराज अपनी चर्चा ही छोड़ देगा।

१८. काम ही जड़ है। काम, लोभ दो बातोंको त्यागना चाहिये, जीविकाके लिये खर्च करनेमें लोभको काममें लेना चाहिये।

१९. उत्तम पुरुष यह बात कहते हैं, संसारमें फँसानेवाली दो वस्तु हैं, संसारका दासत्व एवं अनुचित लोभ। दासत्व छोड़ना है, अनुचित लोभ नरकमें ले जाता है, उचित लोभ नहीं ले जाता।

२०. व्यापार करते हैं, थोड़े नफेसे माल बेचते हैं। दूसरी बात यह है कि दूसरोंकी जीविकामें किसी प्रकारका धक्का पहुँचेगा ही तथा हिंसा भी होगी, इसलिये जितनी कम-से-कम हिंसा हो वैसा व्यापार करना चाहिये।

२१. जिस व्यापारमें विशेष हिंसा हो उसे अवश्य त्याग देना चाहिये। लाह, मच्छर मारनेवाला, चमड़ा, मांस, मदिरा—इन

वस्तुओंके मूलसे त्याग देना चाहिये। दूसरी बात व्यापार-सुधारकी यह है लोभ वृत्ति तो है न्याययुक्त है, दूसरोंके धनको धूलके बराबर समझना चाहिये। दूसरेके हकको चोरी, डकैती, ठगी किसी प्रकारसे नहीं लेना चाहिये।

नम्बर, वजन, नाप सही देना चाहिये, गिनतीमें कम नहीं दे, अधिक नहीं ले।

२२. अन्यायसे नब्बे रुपया आया है इसके लिये आप नौ हजार रुपया दान कर दें, उस दानमें इतनी शक्ति नहीं है जो आपके पापका नाश कर दे, टिकटमें दो रुपयेकी चोरी कर ली उसके लिये पचास रुपया भी दान कर दो तो आपके पापका नाश नहीं होगा।

२३. नब्बे टीनका सौ लिखा दिया, हमारे दस टीनका लाभ हुआ। इसके बदले हम ३००० टीन दे दें तो हमारा दोष नष्ट नहीं होगा।

२४. जिस पैसेमें अपना हक नहीं है उसमें हाथ डालना नरकमें ही पड़ना है।

२५. लोभ न्याययुक्त होना चाहिये।

२६. दूसरोंके हकसे अपना जीवन धारण करना—दूसरेके मांससे अपना मांस बढ़ानेके तुल्य है।

२७. अर्थसे सबकी जीविका चलती है, जीविकासे ही प्राण है। किसीकी जीविका छीननी रूपान्तरमें उसका गला काटने-जैसा है, किसीकी जीविका नहीं छीननी चाहिये।

२८. ब्याज बारह आना सैकड़ा लगानेकी बात हुई, ब्याजका रुपया नौ हुआ, आपने उसे पन्द्रह रुपये बताये, पीछे आठ रुपया लिया, यह बहुत घटिया काम है।

२९. आप जितना छिपाव करेंगे उतनी ही आपकी आत्मा मलिन होगी। अबसे झूठ, कपट नहीं करेंगे, दूसरेका हक नहीं लेंगे तो आजके पहले जो पाप किये हैं वे पाप भी क्षमा हो जायँगे।

३०. हमलोग कहलाते तो साहूकार हैं पर वास्तवमें चोर हैं। दूसरेका हक लेना, झूठ, कपट—ये दोष हमारेमें नहीं होने चाहिये।

३१. पैसा बढ़े चाहे मत बढ़े, अपने तो जिस काममें अन्याय, कपटसे काम हो वह काम नहीं करना चाहिये।

३२. केवल अर्थ जाने बिना गीताका पाठ करनेवालेको यह विश्वास रखना चाहिये कि श्रद्धासे मेरा कल्याण अवश्य हो जायगा।

‘गीताप्रेस’ गोरखपुरकी निजी दूकानें तथा स्टेशन-स्टाल

गोरखपुर-२७३००५	गीताप्रेस—पो० गीताप्रेस website : www.gitapress.org / e-mail: booksales@gitapress.org	© (०५५१) २३३४७२१; फैक्स २३३६९९७
दिल्ली-११०००६	२६०९, नयी सड़क	© (०११) २३२६९६७८; फैक्स २३२५९१४०
कोलकाता-७००००७	गोबिन्दभवन-कार्यालय; १५१, महात्मा गाँधी रोड e-mail:gobindbhawan@gitapress.org	© (०३३) २२६८६८९४; फैक्स २२६८०२५१
मुम्बई-४००००२	२८२, सामलदास गाँधी मार्ग (प्रिन्सेस स्ट्रीट) मरीन लाईन्स स्टेशनके पास	© (०२२) २२०३०७१७
कानपुर-२०८००१	२४/५५, बिरहाना रोड	© (०५१२) २३५२३५१; फैक्स २३५२३५१
पटना-८००००४	अशोकराजपथ, महिला अस्पतालके सामने	© (०६१२) २३००३२५
राँची-८३४००१	कोर्ट सराय रोड, अपर बाजार, बिड़ला गद्दीके प्रथम तलपर	© (०६५१) २२१०६८५
सूरत-३९५००१	वैभव एपार्टमेन्ट, नूतन निवासके सामने, भटार रोड e-mail: suratdukan@gitapress.org;	© (०२६१) २२३७३६२, २२३८०६५
इन्दौर-४५२००१	जी० ५, श्रीवर्धन, ४ आर. एन. टी. मार्ग	© (०७३१) २५२६५१६, २५११९७७
जलगाँव-४२५००१	७, भीमसिंह मार्केट, रेलवे स्टेशनके पास	© (०२५७) २२२६३९३
हैदराबाद-५०००९६	४१, ४-४-१, दिलशाद प्लाजा, सुल्तान बाजार	© (०४०) २४७५८३११
नागपुर-४४०००२	श्रीजी कृपा कॉम्प्लेक्स, ८५१, न्यू इतवारी रोड	© (०७१२) २७३४३५४
कटक-७५३००९	भरतिया टावर्स, बादाम बाड़ी	© (०६७१) २३३५४८१
रायपुर-४९२००९	मित्तल कॉम्प्लेक्स, गंजपारा, तेलघानी चौक (छत्तीसगढ़)	© (०७७१) ४०३४४३०
वाराणसी-२२१००१	५९/९, नीचीबाग e-mail:varanasidukan@gitapress.org	© (०५४२) २४१३५५१
हरिद्वार-२४९४०१	सब्जीमण्डी, मोतीबाजार	© (०१३३४) २२२६५७
ऋषिकेश-२४९३०४	गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम e-mail:gitabhawan@gitapress.org	© (०१३५) २४३०१२२, २४३२७९२

स्टेशन-स्टाल— दिल्ली (प्लेटफार्म नं० १२); नयी दिल्ली (नं० ८-९); हजरत निजामुद्दीन [दिल्ली] (नं० ४-५); कोटा [राजस्थान] (नं० १); बीकानेर (नं० १); गोरखपुर (नं० १); कानपुर (नं० १); लखनऊ [एन० ई० रेलवे]; वाराणसी (नं० ४-५); मुगलसराय (नं० ३-४); हरिद्वार (नं० १); पटना (मुख्य प्रवेशद्वार); राँची (नं० १); धनबाद (नं० २-३); मुजफ्फरपुर (नं० १); समस्तीपुर (नं० २); हावड़ा (नं० ५ तथा १८ दोनोंपर); सियालदा मेन (नं० ८); आसनसोल (नं० ५); कटक (नं० १); भुवनेश्वर (नं० १); राऊरकेला (पुस्तक-ट्राली); राजगांगपुर (पुस्तक-ट्राली); औरंगाबाद [महाराष्ट्र] (नं० १); सिकन्दराबाद [आं० प्र०] (नं० १); गुवाहाटी (नं० १); खड़गपुर (नं० १-२); रायपुर [छत्तीसगढ़] (नं० १) एवं अन्तर्राज्यीय बस-अड्डा, दिल्ली।

फुटकर पुस्तक-दूकानें

चूरू-३३१००१	ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, पुरानी सड़क © (०१५६२) २५२६७४
ऋषिकेश-२४९१९२	मुनिकी रेती
तिरुपति-५१७५०४	शॉप नं० ५६, टी० टी० डी० मिनी शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, तिरुमलाई हिल्स

ISBN 81-293-1320-0

9 788129 313201

Code 1597